भारतोद्धारिणी

भूत और वर्त्तमान खंड।

लेखक—एक सुकवि।

प्रकाशक—

हितैषी पुस्तकालय,

नीचीबाग, बनारस सिटी।

प्रकाशक—
हितैषी पुस्तकालय,
बनारस सिटी।

मुद्रक—
श्री सहादुरराम जी,
हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, बनारस।

❀ विषय सूची ❀

भूत खण्ड ।

वर्तमान खण्ड ।

भूत खंड।

※ मंगलाचरण ※

हे अजर अमरामर दयामय, अलख अविनाशी प्रभो।
अशरण शरण अव्यक्त हरि! सर्वज्ञ सर्वेश्वर विभो॥
हे सृष्टि के कर्त्ता विधाता, धन्य तेरा नाम है।
अत्यन्त दुर्गम शक्ति वाला, अलख तेरा काम है॥ १॥

प्रभु दीनबंधु दयानिधे! अव्यक्तऽजन्मा हे हरे।
कर के दया पूर्ती करो उद्धारिणी का हे हरे॥
अम्ब! जग जननी; तुही हो, मातु जगकी तारिणी।
आर्य्य दल के मध्य, "मां" गूंजै मेरी उद्धारिणी॥ २॥

जगदम्ब! तेरी शक्ति से दीपक सभी के जल रहे।
हे मातु! तेरे नाम पर फल फूल सारे खिल रहे॥

त्रुटियां हमारे हृदय की, हर लीजिये निज शक्ति से।
प्रमुदित हमें कर दीजिये हे अम्ब! अपनी भक्ति से॥ ३॥

निर्बल हमारा मन हुआ, निर्बल हमारा तन हुआ।
दारिद्रता के कोप से, अत्यन्त दुष्कर धन हुआ॥
हैं आप इच्छा शक्ति हरि की, जगत माता नाम है।
संसार के उद्धार का, तेरे करों में काम है॥ ४॥

माँ भारती! सिखलाइये! जो जानते हों हम नहीं।
लाखों विषय हैं, और कितनों में हमारी गम नहीं॥
विज्ञान में तुम कम नहीं अज्ञान में हम कम नहीं।
कर दो प्रकाशित विषय सब रह जाय कोई तम नहीं॥ ५॥

जग जांय सारे विषय अब इस लेखनी की नोक से।
उठ कर सजग हों लोक सब, तेरी कृपा की झोंक से॥
हे मां! प्रगट हो एकता हो प्रेम सब के साथ में।
शोभित रहै यह पुस्तिका नर नारि सब के हाथ में॥ ६॥

प्रार्थना।

हे ईश्वर! हे ईश्वरी! हे देवियों! हे देवता।
कीजे अनुग्रह सर्व, जिस से शान्ति का पावैं पता॥
अवगुण हटा दीजे सकल, सदगुण समस्त प्रचार दो।
यह देश प्यारा मांगता, उद्धार दो! उद्धार दो॥ ७॥

उपक्रमणिका।

लेखनी! तैयार हो, लिखनी तुझे है यह कथा।
कल्पतरु-वत हो के तूं, उद्धार करना सर्वथा॥
मजीठवत ले कालिमा, निज नोक सविनय थाम ले।
उद्धार आर्य्यावर्त्त का, कर तब प्रिये! विश्राम ले॥ ८॥
प्रिय पाठकों! आश्चर्य है; यह काल कैसा कर रहा।
हा! दुष्टमति संसार को, मुंह फाड़; कैसा धर रहा॥
बलवीरता, गंभीरता, अनुपम दिखाता रंग है।
सम्पन्न-लक्ष्मी वीर-वर को भी बनाता रंक है॥ ९॥
संसार का सिद्धान्त सच्चा देख पड़ता है सभी।
इस विश्व में कोई नहीं है एक सा रहता कभी॥
ज्यों जन्म मरणादिक व्यथा, होते तथा जाते सदा।
तेहि भाँति निशि दिन घूमती सर्वत्र विपदा संपदा॥१०॥
देखलो उस सूर्य्य को वह पूर्णतः देता पता।
जो उदय हो कर पूर्व से पश्चिम दिशा में डूबता॥
उत्थान के पीछे पतन संभव सदा है सर्वथा।
मासादि मध्य मयंक यह, सर्वस्व खोता है यथा॥११॥
जो जागता है जगत में, वह सोवता होगा कभी।
जो सोवता होगा कभी, वह देख पड़ता है अभी॥

तात्पर्य्य ! जो उन्नत रहा अवनत वही होगा कहीं।
जो आज निर्धन हो रहा धनवान कल होता वही ॥१२॥
ऐसी दशा ही बन्धुओं ! है ठीक भारतवर्ष की।
उत्कर्षता जाती रही उन्नत हुई अपकर्ष की॥
गुरु देश भारत पूर्व से संसार का सिरमौर है।
पर काल रूपी चक्र से अब दृश्य ही कुछ और है ॥१३॥
जिस शान्ति वन में प्रेम से शुक शारिका गाते रहे।
निर्मल तड़ागों में वनज--बहु भृङ्ग गण पाते रहे॥
जहँ रम्य रम्यारण्य में थी कोकिला मृदु बोलती।
पाठक ! परस्पर प्रेम से, थी सिंहनी मृग डोलती ॥१४॥
पर हाय उस आराम का कुछ दूसरा अब हाल है।
सर्वस्व इति श्री हो चुकी हा ! कालवतही व्याल है॥
जिसका रहा उत्थान जैसा पतन वैसा ही हुआ।
जैसे बढ़ा था ज्वार, भाठा ठीक वैसा ही हुआ ॥१५॥
हा ! प्रेम पटुता एकता का दल जहाँ रहता रहा।
सानन्द निर्मल सत्य का ही श्रोत जहँ बहता रहा॥
विद्वेष दुर्गुण द्रोह-दुशमन वास करता है वहाँ।
नित कर्कशा कुररी बिचरती घूमती फिरती तहाँ ॥१६॥
पाठक ! कहूंगा आज हम उस भूत की सर्वज्ञता।
की कुछ कथा; ले उपमा इस काल की अल्पज्ञता॥
होंगी अनेकों त्रुटियां नहिं ध्यान में कुछ लाइयो।
उद्योग कर उद्धार पथ विशु ! शिघ्र गहि हो भाइयो ॥१७॥

॥ ईश्वर विषय ॥

हे भाइयों यह सृष्टि सारी, पूर्व में, उत्पन्न थी।
यह आधार, ग्रह, पृथ्वी तथा सूर्यादि मय सम्पन्न थी॥
थी पूर्व में यह जिस तरह, अब है, तथा होगी कभी।
*होगा कभी भी स्वामि इस का, था वही, जो है अभी॥१८॥

पृथ्वी तथा सूर्यादि लोकों को, बनाता है वही।
उत्थान पालन, प्रलयकारी, ईश दिखलाता वही॥
सम्पूर्ण लोकों को बना, जो कर रहा धारण सदा।
पूजन करो उस †ईश की नित ध्यान देकर सर्वदा॥१९॥

---

* जो यह जगत उत्पन्न हुआ था, जो होगा और जो इस समय है इस तीन प्रकार के जगत को वही रचता है, उस पुरुष की अनन्त महिमा है, वह सर्वोत्तम शक्तिवाला है अर्थात् उसमें अनन्त ज्ञान अनन्त बल और अनन्त क्रिया हैं।

† जैसे इन्द्रियों से स्पर्श होने से गुणी जो वायु का आत्मा युक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने पर ईश्वर का भी प्रत्यक्ष सिद्ध होता है।

क्लेश कर्म विपाका शयैर परा मृष्टः पुरुषः विशेष ईश्वरः॥

योग सूत्र समाधिपादे॥२४॥

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्॥ योग सूत्र-समाधिपादे॥ २५॥

जिसमें सर्वज्ञता का बीज हो, जो त्रिकाल में समग्र ब्रह्मांड में व्याप्त हो तथा प्रत्येक प्राणी के देह में स्थिर हो, वही ईश्वर है। जो विश्व में ईश्वर

दोहा।

जो कछु जग संसार में; जानैं ताकी भेव।
व्याप्त होहि विचरे सदा; सो परमातम देव ॥२०॥

चौपाई।

ईश्वर कहहिं वेद महँ वाणी।
सो चित धरि गहहू सब प्राणी॥
न्याय पृथक होकर भयभीता।
अन्य चित्त लगि करहु न प्रीता॥
सदा धर्म ते राखहु प्रीती।
त्यागहु मनुज अधर्म अनीती॥
न्याय धर्म ते होहु अनन्दा।
आतम सुख भोगहुं नर वृन्दा॥ २१ ॥

सुनहु मनुज ! मैं ईश तुम्हारा।
लोक सृष्टि सब रचित हमारा॥
सब ते प्रथम रहौं विद्यमाना।
मेरो भेद काहु नहिं जाना॥

सच्चिदानन्द-स्वरूप, सर्वज्ञ सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अव्यक्त, अजन्मा, अनन्त, अजर अमर, अभय, दयालु, निराकार निर्विकार न्यायकारी, और सर्व शक्तिमानादि नामों से विख्यात है।

जगत नाथ हूँ पालन हारा।
सर्व विश्व कर हूँ जयकारा॥
दाता तथा जगत सुखदाई।
यहि लगि नाना वस्तु बनाई॥ २२॥

जीवों! सदा तुम, ध्यान दो, कल्याण तेरो ठानता।
ज्यों पिता जाने पुत्र को, तद्वत तुम्हें मैं मानता॥
त्यों, पुत्र जाने पिता को, तद्वत तथा मुझ को सभी।
रवि सम, सदा हूं मैं प्रकाशक, अजर अमरामर सभी॥२३॥

मैं ही जगतपति ईश हू॰ आधार पृथ्वी का सदा।
अविच्छिन्न, अविनाशी प्रभो! सर्वत्र व्यापक सर्वदा॥
जीव! तुम ऐश्वर्य्य कारण, यत्न कुछ करते हुए।
विज्ञान धन मांगो सदा, प्रिय मित्रता, रखते हुए॥२४॥

चौपाई।

जो जन करहिं सत्य सम्माना।
तिन कहँ देउँ सनातन ज्ञाना॥
मैं ही ब्रह्म बेद प्रगटाया।
जाते विदित होत मम माया॥
सबहिं बढाऊँ ताते ज्ञाना।
सदा यज्ञ महँ दूँ शुभ माना॥
जो कछु व्याप्त जगत के माहीं।
धारों तथा रचूं मैं ताहीं॥ २५॥

एतदर्थ मोहिं छोड़ कर तुम अन्य को नहिं मानना।
मेरे जगह पर किसी को, नहिं भूल कर भी जानना॥
कल्याण कारक, सत्य पथ पर, ध्यान दो, जीवों सभी।
पूजा करौ नहिं अन्य की, तुम छोड़ कर मुझको कभी॥२६॥

ईश्वर स्तुति।

दोहा।

अविचल अविनाशी प्रभो; असुरारी हृदयेश।
अजर अमर आगार नित; हो विश्वनाथ विश्वेश॥ २७॥

॥ चौबोला ॥

हो विश्वनाथ विश्वेश विश्वपति त्रिविधताप क्षयकारी।
मोहन, माधव, मधुसूदन, मुरलीधर हो असुरारी॥
गौरीशं, गिरिपति, गणपति हो गुणातीत त्रिपुरारी।
विश्वनाथ! हो विभो विश्वपति भक्त भीर भय हारी॥२८॥

दौड़—करो ना नाथ विलंबा॥ शिघ्र प्रभु फारहु खंभा॥
भंवर महँ भारत नैया। सिवा तेरे को जग में स्वामी
नैया पार करैया॥२९॥

हे नाथ ज्ञान स्वरूप हो! धीरज स्वरूप महेश जू।
गिरिराज! गणपति! अंकपति! स्वर शब्द रूप गनेश जू॥

गौरीश ! गिरिजापति प्रभो ! व्यापक अरूप सुरेश जू।
विश्व-नाथ हो नरनाथ हो ! अशरण शरण हृदयेश जू ॥३०॥

दोहा।

मीनकेतु पति महीधर; मन्मथारि मदनारि।
निरखि दशा यहि देश को; कृपा करहु कामारि ॥ ३१ ॥

मंगल स्वरूप महेश जू ! अब तो कृपा दिखलाइये।
सुधि लीजिये इस देश की कृपया प्रभो चितलाइये॥
हो नाथ सब में एकता वह प्रेम पथ सरसाइये।
अघ ओक शोक विनाश कर दुष्कर्म सर्व मिटाइये ॥३२॥

अशरण शरण अव्यक्त प्रभु ! अवलम्ब अपना दीजिये।
इस भव्य भूमी को पुनः ज्ञानी अमानी कीजिये॥
हैं आप ईश्वर विश्वपति सर्वज्ञ तेरा नाम है।
इस देश के उद्धार का तेरे करों में काम है॥ ३३ ॥

प्रभु लड़ रहे नर द्वैत में अभिमान में अज्ञान में।
विश्वनाथ ! नहिं देरी करो अद्वैत के विज्ञान में॥
हम सेवकों के आप ही गुरुदेव माई-बाप हैं।
स्वामी समय तो आ गया, फिर आप क्यों चुपचाप हैं ॥३४॥

गज ने पुकारा था तुम्हें पहुंचे गरुड़ को छोड़ कर।
अब सो गये हैं आप क्या सब मोह माया तोड़ कर॥

जब जब धरा पर भीर यदि, भगवन कदा पड़ती कहीं।
युग युग प्रभो! अरि दल विनाशन जन्म लेते हो वहीं ॥३५॥

हे अजर अविनाशी अमर! इस मर्म को न छिपाइये।
ले चक्र कर में नाथ अब वृज में तुरत चल आइये॥
आकर वहा दो हे दयामय! छल कपट पाखंड को।
निर्मल बना दीजै प्रभो! इस दुष्ट मति ब्रह्मांड को ॥३६॥

सृष्टि-उत्पत्ति।

उस सृष्टि के पूर्वान्त में सर्वत्र तिमिराच्छन्न था।
निर्मल निरंजन के सिवा नहिं अन्य कोई भिन्न था॥
आधार ग्रह पृथ्वी तथा महतत्व का नहिं दर्श था।
इन्द्रादि रवि शशि बुद्ध का नहिं यह अमित उतकर्ष था ॥३७॥

यह प्रकृति रूपी शक्ति प्रभु के पास ही तैयार थी।
इस सृष्टि की सामग्रियाँ प्रस्तुत प्रचुर भरमार थी॥
थीं लीन सारी ब्रह्म में बस शून्य का ही लेश था।
सर्वत्र तम मय व्याप्त था नहिं दर्शता कुछ भेष था ॥३८॥

आच्छिन्न तिमिराकाल में आविष्ट ईश्वर था जहाँ।
सर्वज्ञ सर्वेश्वर प्रभो! यहि चाह करता था वहाँ॥
लोकादि की रचना तथा इस विश्व का वीकाश हो।
अद्भुत विभूती-युक्त रवि शशि का सदा परकाश हो ॥३९॥

हुई प्रथम में दिव्य सृष्टी सूर्य्य लोकादिक तथा।
पाताल वायु अग्नि जल आकाश पृथिवी सर्वथा॥
चन्द्रादि ग्रह तारे नक्षत्रादिक जहां तक देखते।
वुद्धादि मंगल ग्रह तथा आधार-पृथ्वी लेखते॥४०॥

निज शक्ति रूपी वीज से प्रभु! सृष्टि अंडेका किये।
रवि कान्तिवत; उस पिन्ड में, वसि-वर्ष तव खन्डन किये॥
स्वर्गादि भूतल, तल सुतल सब अंड के ही मध्य में।
वितलादि अरु पाताल जग, उत्पन किये तेहि मध्य में॥४१॥

स्वर्गादि लोकों को रचे उस अन्ड के अपरांश में।
पृथ्वी तथा पाताल की रचना किये शेपांश में॥
क्षितिजादि अरु आकाश की सृष्टी भई मध्यांश में
सागर समुद्रादिक रचे, प्रभु! सृष्टि के निम्नांश में॥४२॥
यह चन्द्रमा मन से तथा रवि तेज से उत्पन हुआ।
प्राण-वत-सामर्थ से यह पवन का वितरण हुआ॥
मुख से प्रगट अग्नी तथा सामर्थ से संसार यह।
सर्वस्व का विशु! मूल है; वहि ईश! जो भरमार यह॥४३॥

गोस्वामी सृष्टि।

निज शक्ति रूपी वीज से विधि विष्णु को पैदा किये।
इस सृष्टि के सम्वंध की सामग्रियां साग्रह दिये॥

विधि सृष्टि कर्त्ता हों तथा हरि सर्वदा पालन करें।
विशु! शक्ति रूपी अंश से यह सृष्टि संचालन करें ॥४४॥

जब सृष्टि के उत्थान में ब्रह्मा विकल व्याकुल हुये।
एकाग्र मति गंभीर गति करि ध्यान शंकर का किये॥
विधि के ललाटोद्यान से रोते हुये शंकर प्रभो।
होकर प्रगट बोले वचन सर्वज्ञ सर्वेश्वर विभो ॥४५॥

जो कार्य्य कारण ध्यान तैने था किया मेरा यहाँ।
वह सृष्टि तेरी पूर्त्ति होगी; है असंशय ही यहाँ॥
मोहिं नाम करणादिक तथा कर्त्तव्य कुछ बतलाय दो।
मेरे विषय के कार्य्य सब प्रभु! पूर्णतः समझाय दो ॥४६॥

विधि ने कहा हे तात! तुम रोते हुए उत्पन हुये।
यहि-जन्य भगवन! रुद्र तेरो नाम है हमने दिये॥
महिनस महा मन्यू तथा महिनादि आदिक नाम है।
होंगी अनेकों नारियां जिनके अनेकों नाम है ॥४७॥

भो! शक्ति रूपी अंश से उस सृष्टि को उत्पन करो।
भगवन्! हमारे कार्य्य का, कुछ शीघ्र ही संकट हरो।
लोकादि में; अंडज तथा उद्भिद सहित उत्पन्न कर।
विधि को दिखाया रुद्र ने नर सृष्टि से सम्पन्न कर ॥४८॥

थी पूर्णतम से युक्त वह; संहार भगवन् ने किया।
सात्विक वृती के हेतु तप का, लक्ष निज मन में लिया॥

परिव्राट महिनस ! शान्ति पा; सात्विक गुणों से युक्त हो ।
आये पुनः निज सृष्टि कारण पूर्ण तम से मुक्त हो ॥४६॥

विधि के ललाटोद्यान से उद्भव हुआ जिनका यहाँ ।
कुटिचक तथा गोस्वामि उनको आज हम कहते यहाँ ॥
सन्यस्थ का सब कार्य्य, विधि ने प्रेम से साग्रह दिया ।
सब भार सारे विश्व का; आधीन ब्रह्मा ने किया ॥५०॥

ब्राह्मणादि सृष्टि ।

उस सृष्टि के वीकाश का जब ध्यान विधि चित में किये ।
तेहि काल ब्रह्मा ने तुरत मुख से प्रगट ब्राह्मण किये ॥
तात्पर्य्य ! ये ब्राह्मण हुये उस ईश के मुख से प्रगट ।
मुखवत कहे जाते वही हैं, कर्म जिनके अति विकट ॥५१॥

बाद में क्षत्रिय हुये उस ईश के कर से प्रगट ।
जो रण-विशारद वीर गण नीतिज्ञ होते हैं सुभट ॥
विधि ने समूचे अंग से कायस्थ को पैदा किया ।
साहित्य का सब काम उनको प्रेम से साग्रह दिया ॥५२॥

तलवार को भी कलम के आधीन ब्रह्मा ने किया ॥
कायस्थ ! ब्रह्मा ने भला क्या आपको कुछ कम दिया ।
उरुसे हुए उस ईश के, जिस वर्ण की उत्पत्ति है ॥
वर्णादि भेद विचार से वह वैश्य की व्यूत्पत्ति है ॥५३॥

शूद्रगण पग से हुये जो शेष तीनों से अधम ।
यहि भांति यह नर सृष्टि है सबसे हुए ब्राह्मण प्रथम ॥
बहु भांति अनुपम साज से सज कर बना संसार है ।
निज बुद्धि मन संयोग कृत प्रारब्ध का बाजार है ॥५४॥

वर्णाश्रम कर्म ।

ब्राह्मण ।

जो वेद का पढ़ना पढ़ाना धर्म अपना मानता ।
करना कराना यज्ञ नित उद्देश्य अपना जानता ॥
दान दे नित दान ले, षट्कर्म में संतति रहा ।
शास्त्र ज्ञानी संत ने ब्राह्मण उसे ही है कहा ॥५५॥

शैशव दशा में सर्वदा जो रीति जग की सीखता ।
ऋग साम यजु वेदान्त का जो न्याय दर्शन दीखता ॥
था जानना सो जान कर नित धर्म में मन लाय है ।
यहि आत्म से चित लाय जो नित ब्रह्म सुख बहु पाय है ॥५६॥

सन्तत सदा उस ब्रह्म को जो सर्व व्यापी मानता ।
सर्वदा सब से पृथक आभास ऐसा जानता ॥
तत्व ज्ञानों से सदा जो जानता हो ब्रह्म को ।
ब्राह्मण वही ! ब्राह्मण वही ! जो जानता हो ब्रह्मको ॥५७॥

अन्यत्र इसके और भी कुछ कर्म इनके शेष हैं।
जप तप हवन देवादि का, बलि वैश्व भी अवशेष हैं॥
सन्ध्या हवन उस ब्रह्मका प्रणिधान प्रणवादिक यदा।
अतिथी शुश्रूषा, स्वाध्याय शुभ, निज सत्यरक्षा सर्वदा॥५८॥

सुख दुःख जानै एकसा जीवन मरण तद्वत तथा।
लाभादि व्यय चिन्ता विरत योगी यती जानैं यथा॥
स्वच्छन्दता से सर्वदा निज आत्म सुख जो भोगता।
धर्म्मादि कर्म्मों से सदा इस जीव को जो जोगता॥५६॥

क्रूरादि भावों से पृथक हो "तत्वमसि" में सर्वदा।
नित शुद्ध चित से विश्वपति का ध्यान धरता हो सदा॥
लक्षणों से पूर्ण हो निज कर्म करता सर्वदा।
वह विप्र विषयानन्द से नहिं क्लेश पाता है कदा॥६०॥

मन रूप वन को शुद्ध करि अज्ञानता तम काट कर।
सत्संग की कुटिया बना आनन्दता से पाट कर॥
एकान्त कुटिया में बसे तजि क्लिष्ट रूपी क्रूर को।
ब्राह्मण वही! ब्राह्मण वही ब्राह्मण वही भर पूर हो॥६१॥

क्षत्रिय।

रक्षा प्रजा की सर्वदा आलस्य ईर्ष्या से रहित।
करता सदा यज्ञादि शुभ वेदादि मंत्रों के सहित॥

धर्म से नित धरा का जो हरण करता है व्यथा।
सर्वादि गुण सम्पन्न हो पाले प्रजा जो सर्वथा ॥६२॥

शैशव दशा में सर्वदा ब्रह्मचर्य्य में मन लावता।
ऋषि भूमि में तन को तपा जो वीरता नित पावता॥
होकर विशारद युद्ध में; नहिं मुख कभी भी मोड़ता।
कृतान्त-इव अरि का किला जो वीरता से तोड़ता ॥६३॥

जो अस्त्र शस्त्रादिक तथा बहु बाण विद्या विज्ञ हो।
साहित्य कविता शास्त्र अरु जो न्याय पथ्या भिज्ञ हो॥
अज्ञान सारे शत्रुओं का नाश करता हो सदा।
यश पूर्ण विमला कीर्ति का ही ध्यान रखता सर्वदा ॥६४॥

निज राज्य भर में पक्षपात विनाश का अंकुर नहीं।
रखता सदा सम भाव हो सर्वत्र सब में एक ही॥
यहि भांति गुण सम्पन्न हो पाले प्रजा जो सर्वदा।
ज्ञानी अमानी संत मति क्षत्रीय सोई है सदा ॥६५॥

कानून ऐसा एक हो, दुस्कर्म सारे ह्रास हों।
विकराल काल स्वरूप वाले कर्म सत्यानाश हों॥
उपदेश से वा लेख से या सभा से फल तुच्छ हों।
कानून से हो देश का कल्यान हो नर स्वच्छ हों ॥६६॥

वैश्य ।

सेवा तथा पालन करे नित पशुगणों की सर्वथा ।
वृषभादि गावों को कदा नहिं क्लेश रूपी हो व्यथा ॥
उन वेद-मंत्रों के सहित जो मेध में चित लाय है ।
निज जीविका के हेतु नर जो कृषी में ही धाय है ॥६७॥

व्यापार रूपो कर्म ही जिसके ग्रहण के योग्य है ।
गार्हस्थ का कृषि के सिवा नहिं अन्य कोई भोग्य है ॥
वेदादि पढ़ता हो तथा जो दान दे चित लाय कर ।
शिव भक्त ब्राह्मण साधु से जो हर्ष होता पाय कर ॥६८॥

करता सदा व्यापार हो, पर, धर्म-धन भी जानता ।
जो दान ही को सूद या दरसूद दिल में मानता ॥
रक्खे सदा जो चंचला श्री लक्ष्मी को रोक के ।
बन कर हितैषी लोक का, प्यारा बने परलोक के ॥६९॥

निज देश का जो सर्वदा यहि भाँति नित उन्नति करे ।
चेष्टा सहित निज कर्म से ही सर्वदा अवनति हरे ॥
निज पंथ से होकर विमुख नहिं कर्द में फसता कहीं ।
ज्ञानी अमानी संत कहते वैश्य सचमुच है वही ॥७०॥

शूद्र ।

सेवा करे सब, वर्ण की आनन्द से चितलाय कर ।
पालन करे आज्ञा सभी नित हर्षता को पाय कर ॥

उपरोक्त वर्णों से सदा गुरु भाव जो चितलाय है।
करि करि वचन पालन सदा, निज क्षिप्तता हटवाय है ॥७१॥

यहि भांति करि सत्संग नित शूद्रत्व मूल मिटावता।
पालन करे निज उदर का जो वर्ण-द्विज से पावता ॥
दिन दिन अधिक अधिकाय मन सेवादि महँ जो लावता।
ज्ञानी अमानी संत कहते शूद्र सोही होवता ॥७२॥

श्री मम विधाता ब्रह्मजी का चार जाति विधान है।
हैं चार विधि के कर्म सब यह मर्म सिद्ध महान है ॥
ब्राह्मण विचारें और क्षत्री सर्व रक्षा रत रहें।
वे वैश्य व्यापारी बनें, पुनि शूद्र सेवा व्रत गहें ॥७३॥

ब्रह्मचर्य्यादि आश्रम।

संसार के समरस्थली से पार कारण सर्वदा।
कर्त्तव्य जीवन का रहा निर्धार आश्रम पर सदा ॥
कार्य्य सबसे पृथक सबके चार आश्रम सिद्ध हैं।
ब्रह्मचर्य्य गृह वनवास अरु सन्यस्थ चार प्रसिद्ध हैं ॥७४॥

निज आयु का पहला समय जो शुद्ध सात्विक भाव से।
इन्द्रिय दमन निज वीर्य्य रक्षा प्रेम रूपी चाव से ॥
करता तथा वेदादि पढ़ता हो सदा सानंद से।
व्यापार विषयक ज्ञान अरु विज्ञान नित आनंद से ॥७५॥

पाठक ! बिताता हो सदा ब्रह्मचर्य्य वाको जानिये ।
ब्रह्मचर्य्य कर गार्हस्थ हो, गृह सांच वाको मानिये ॥
जप योग अरु यज्ञादि निज शुभ कर्म जाका काम है ।
दानादि धर्माचरण-रत व्रत होंहि तेहि गृह नाम है ॥७६॥

पूर्ण गृह ! मन शुद्ध करि, निज प्रेयसी के साथ में ।
इन्द्रिय दमन करता सदा, मन-रज्जु लेता हाथ में ॥
चित वृत्ति का निग्रह करे एकान्त कुटिया में सदा ।
भजता निरन्तर ईश को वनवासि सोई सर्वदा ॥७७॥

तजि कामिनी कांचन तथा इच्छा रहित जो सर्वदा ।
विशु ! ध्यान ईश्वर का तथा यप योग धर्मादिक सदा ॥
आभास आतम का तथा, हूं ब्रह्म अस्मी तक कदा ।
करता सदा सानंद चित सन्यस्थ होता सर्वदा ॥७८॥

सन्यास ।

जो काम्य कर्मों का सदा ही त्याग करता हो यती ।
कामादि लोभों से रहित हो त्याग करता जो रती ॥
उद्देश्य की सिद्धी लिये ही कर्म करता हो नहीं ।
व्याहृति है कुछ भाष्य की सन्यास हो सक्ता वही ॥७९॥

ज्ञानी अमानी संत जन उपदेश देते हैं यही ।
हां ! क्या काम्य कर्मों का कभी भी त्याग हो सक्ता कहीं ?॥

जो याव्वजीवन कर्म फल से विमुख रहता सर्वदा।
विश्वनाथ ! ज्ञानी संत अस परिव्राट होते हैं सदा ॥८०॥

॥ चौपाई ॥

मत अनेक फैले जग माहीं।
ताकर वोध होत कछु नाहीं ॥
सज्जन सुनहु ध्यान मन लाई।
जेहि मत कहेउ स्वयं यदुराई ॥
मत प्रवीण दीखे जग माहीं।
यहि सम भिन्न और कोउ नाहीं ॥
कौरव कीन्ह जवहिं मत भेदा।
पांडव सुतहिं भयउ अति खेदा ॥ ८१ ॥

कृष्ण जाइ वहुविधि समझायो।
विश्वनाथ ! तेहि नेकु न भायो ॥
दोउ दल माहिं समर तव भयऊ।
भारत भाग्य दीप वुझि गयऊ ॥
शूर समूह जुझे रण माहीं।
जाकै कथन होय कछु नाहीं ॥
दनुज नाश कारण हे भाई।
पारथ रथ हांकेउ यदुराई ॥ ८२ ॥

॥ दोहा ॥

अर्जुन देख्यो समर में, बन्धु वर्ग समुदाय ।
घृणा शोक में लीन हो, कहते यही बुझाय ॥ ८३ ॥

॥ चौपाई ॥

पुज्या पूज्य श्रेष्ठ जन भाई ।
श्वसुर पौत्र सम्बन्धि जँवाई ॥
पूज्य पितामह करहिं लड़ाई ।
इनते लड़ौं कवन विधि भाई ॥
गांडिव छुटत हस्त ते मेरा ।
फरकत ओष्ट भयउ मति भेरा ॥
चित कंपित रोमाञ्च शरीरा ।
दृश्य देख छूटै मम धीरा ॥ ८४ ॥

सखे सुनहु मम आरति बानी ।
मैं नहिं युद्ध करब यह ठानी ॥
सोचहु नीति नीक असुरारी ।
युद्ध-विरुद्ध-भयंकर भारी ॥
पारथ वचन सुनत यदुराई ।
सोचे यहि मन मोह समाई ॥
बोले प्रगट कृष्ण तव बानी ।
पारथ! क्यों? यह नीति बखानी ॥ ८५ ॥

॥ दोहा ॥

यहि अवसर पर मोह यह, जग्यो कहाँते आय ।
युद्ध करहु मम मीत तू, कायरता बिसराय ॥ ८६ ॥

॥ चौपाई ॥

तन धन धाम बंधु परिवारा ।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥
क्षण भंगुर यह मनुज शरीरा ।
यहि पर मोह करत क्यों वीरा ॥
आतम अमर नित्य अविनाशी ।
क्षण भंगुर यह देह विनाशी ॥
काट सकै नहिं अस्त्र कराला ।
वायु शुष्क नहिं जालै ज्वाला ॥८७॥

सब से रहित सदा सुखदाई ।
अमर सनातन है यह भाई ॥
यहि विधि ज्ञान दियो बहु भांती ।
पारथ युद्ध धर्म तव जाती ॥
त्यागहु मोह ; करहु रण घोरा ।
मानहु वचन सत्य यह मोरा ॥
ज्ञान अनेक दियो यदुराई ।
सांख्य योग नाना विधि भाई ॥८८॥

॥ दोहा ॥

पूर्ण भेद सन्यास के, सांख्य योग समझाय ।
कीन्ह कथन कमलापती, पारथ प्रति हर्षाय ॥८६॥

॥ चौपाई ॥

जो जन करहिं कर्म फल त्यागा ।
इच्छा रहित करहिं अनुरागा ॥
इच्छा त्याग करहिं जन जोई ।
सत्यमेव सोइ भिक्षुक होई ॥
काम्य कर्म जो अग्नि निषेधा ।
त्यागे विहित कर्म अरु मेधा ॥
सत्य धर्म महँ चित नहिं लावे ।
सो जन नहिं सन्यास कहावे ॥९०॥

॥ दोहा ॥

रागी त्यागि एकान्त नित, ममता मोह दुराय ।
सुःख दुःख सब सहन करि, होय विरागी भाय ॥९१॥
पिता पौत्र सम्बन्ध तजि, धरे आतमा ध्यान ।
विशुना ! निशि दिन ईश का, करता यहि विधि ज्ञान ॥९२॥
पृथक कर्म फल से रहे, तेहि सन्यासो जान ।
जाकौ कर्म अनेक हैं, निम्न कह्यो तेहि मान ॥९३॥

वेदान्त वाक्येषु सदा रमन्तो,
भिक्षान्न मात्रेन च तुष्टिमन्तः ।

विशोकमन्तः करणे रमन्तः,
कौपीनवंतः खलु भाग्यवन्तः ॥ ६४ ॥

मूलं तरोः केवल माश्रयन्तः,
पाणिद्वयं भोक्तुममन्त्र यन्तः ।
कन्थामिव श्रीमपि कुत्सयंतः,
कौपीनवंतः खलु भाग्यवंतः ॥ ६५ ॥

देहादि भावं परिवर्तयन्तः,
आत्मान मात्मन्यवलोकयन्तः ।
नान्तं न मध्यं न वहिः स्मरंतः,
कौपीनवंतः खलु भाग्यवंतः ॥ ६६ ॥

स्वानन्द भावे परि तुष्टि मन्तः,
सुशान्त सर्वेन्द्रिय तुष्टि मन्तः ।
अहर्निशं ब्रह्म सुखे रमन्तः,
कौपीनवंतः खलु भाग्यवंतः ॥ ६७ ॥

पञ्चाक्षरं पावन मुच्चरन्तः,
पतिं पशूनां हृदि भावयन्तः ।
भिक्षाशिनो दिक्षु परिभ्रमन्तः,
कौपीनवंतः खलु भाग्यवंतः ॥ ६८ ॥

॥ दोहा ॥

आश्रम चौथो जानिये, "योग अङ्ग के साथ"
याको चारो भेद को, वरनत हैं विसुनाथ ॥ ९९ ॥

कुटिचक ।

कुटिचक उसी का नाम है जो वन्धु दारा के सहित ।
करता सदा गृह वास है आलस्य ईर्ष्या से रहित ॥
जो तत्व ज्ञानों में निरंतर मग्न रहता सर्वदा ।
निर्मल निरञ्जन विश्व पति से चित लगाता हो सदा ॥१००॥

नित धर्म को धारै तथा जो सत्य में मन लाय है ।
करि करि मनन उस ब्रह्म को साक्षात्वता जो पाय है ॥
इच्छा रहित जो सर्वदा यहि भांति साधन में लगा ।
पावस तथा पय-वत सदा उस ईश से जो हो पगा ॥१०१॥

भिक्षा तथा काषाय को कर्त्तव्य अपना मानते ।
विश्वनाथ ! ज्ञानी संत जन कुटिचक उन्हें ही जानते ॥
प्रमाण ऋषियों का यही जो निम्न अङ्कित है वही ।
शास्त्रादि सब कहते वही करते समर्थन हैं यही ॥१०२॥

॥ वहूदक ॥

ब्राह्मण वही सन्यास में अवतीर्ण होता है क्रमा ।
जो पूर्णतः वैराग्य पर गृह त्याग करता सर्वदा ॥

सुख-दुःख जीवन-मरण को जो एकसा ही मानता।
सब दुर्गुणों को दूर कर उस ईश को हो जानता ॥१०३॥

दंड धारण कर सदा जलपात्र रखता पास है।
जो कदा इक ठाम में, करता न अस्थिर वास है॥
शिखा यज्ञोपवित से नित-कर्म करता हो विहित।
साथ रहता हो सदा जो पादुका आसन सहित ॥१०४॥

नित तत्व मसि के साथ ले रहता सदा सानन्द से।
जो प्राप्त करता हो सदा आनन्द ब्रह्मानन्द से।
सब प्राणियों में ज्ञान की उन्नत निरन्तर जो करे।
उपदेश द्वारा देश के उद्धार का साधन करे ॥१०५॥

योगादि विषयों से निपुण मन आत्म में जो लावता।
यहि भांति उस सर्वज्ञ की यह अमित सुख जो पावता॥
यज्ञादि तप हवनादि अरु शुभ पंथ जाका कर्म हैं।
अङ्गादि आठो योग के करना ही जिसका धर्म है॥१०६॥

काषाय धारण कर सदा चिंतन करे भगवान का।
जो ब्राह्मणों के अन्न से रक्षा करे निज प्राण का॥
उपरोक्त गुण सम्पन्न यदि परिव्राट होते हैं कदा।
ज्ञानी अमानी संत जन बहुदक उन्हें कहते सदा ॥१०७॥

हंस ।

ऐ बंधुओं ! अब हंसका भी चित्र दर्शन कीजिये ।
इनके विषय में भी यहां अब ध्यान थोड़ा दीजिये ॥
धार्मिक तथा जो विज्ञ हो अच्छे बुरे के ज्ञान में ।
जो सर्वदा ही मग्न रहता, आतमाके ध्यान में ॥१०८॥

सर्वदा उस हंस के गुण-भाँति जो है देखता ।
"हंस को देखो सदा वह नीर क्षीर परेखता ॥
वह कभी भी क्षीर में यदि नीर मिश्रित पावेगा ।
नीर को कर के पृथक वह क्षीर ही पी जायेगा" ॥१०९॥

आभास ऐसा हो तथा सम्बन्ध रक्खे सूत्र से ।
जो रहित रहता हो सदा दारा सहित निज पुत्र से ॥
विहित कर्मों के लिये जो शिखा रखता हो सदा ।
नित विश्व पति के ध्यान में ही मग्न रहता सर्वदा ॥११०॥

भिक्षा तथा कापाय को कर्त्तव्य अपना मानता ।
सर्वदा करना भ्रमण जो धर्म अपना मानता ॥
आन्हिक तथा जो सत्य से करता नहीं आतङ्क हो ।
निज धर्म रक्षा में कदा करता नहीं आशङ्क जो ॥१११॥

इन सब गुणों से युक्त हो जो ध्यान ईश्वर का करे ।
नित क्लिष्ट वृत्ति में मग्न जीवों का सदा संकट हरे ॥

उपरोक्त गुण सम्पन्न यदि परिव्राट होते हैं कदा।
विश्वनाथ! ज्ञानी संत उनको हंस कहते है सदा ॥११२॥

परंहंस।

त्यागे विहित सूत्रादि सब नहिं सृष्टि रक्खे दृष्टि में।
निज आत्म का चिंतन करे आनन्द रूपी वृष्टि में॥
कर्त्तव्य पर करता निछावर, वदन अपना पलक में।
हो खलक भीतर घूमता उस अलख वाली झलक में ॥११३॥

यह देह तत्वों से बनी प्रति मनुज में सब तत्व हैं।
हैं तत्व सब में एक ही, रखते समान महत्व हैं॥
वह ब्रह्म अणु अणु देख कर सम दृष्टि सबमें भावता।
घट को समझता तुच्छ हो नित ब्रह्म में मन लावता ॥११४॥

चित वृत्ति ब्रह्माकार करि सुख सेज ऊपर सोवता।
ज्ञानी अमानी भाव से जो भूलका मल धोवता॥
हूं ब्रह्म अस्मी का जिसे परिज्ञान पूरा हो गया।
शास्त्र ज्ञानी संत ने, परंहंस उनको ही कहा ॥११५॥

वर्णाश्रम में ब्रह्मदृष्टि।

षट कर्म, द्विज के करि हवन, पावे अनादी ब्रह्म को।
शव-रूप से शिव-रूप हो, कीन्हा सफल निज जन्मको॥

था जानना सो जान कर कृत कार्य्य नर जो हो गया।
ज्ञान। अमानी संतने ब्राह्मण उसे ही है कहा ॥११६॥

माया किला दुर्गम्य अति शत छिद्र कर के तोड़ता।
आतम अनातम युद्ध में नहिं मुख कभी भी मोड़ता॥
साम्राज्य निश्चल पाय के आरूढ़ तापे होय है।
ज्ञानी अमानी संत कहते शूर क्षत्री सोय है॥११७॥

टोटा समझकर वास्तविक, धंधे जगत के त्यागता।
दिन दिन अधिक हों, दिव्य गुण, ऐसे वणिज में लागता।
खेती करे श्रवणादि की, परिपूर्ण हो धन आत्म से।
ज्ञानी अमानी संत सच्चा वैश्य कहते हैं उसे॥११८॥

आसक्ति लौकिक वस्तु में करना यही है शूद्रता।
यह भाव तजि भजि ब्रह्म को शूद्रत्व मूल मिटावता॥
दासत्व था मैंपन खरा, मैंपन गया, स्वामी बना।
ज्ञानी अमानी संत कहते, शूद्र सोही मानना॥११९॥

ज्यों ब्रह्म व्यापक एक रस, सम भावमें विश्राम हो।
तन मन वचन होवे यती, नहिं नाम को भी काम हो॥
चित वृत्ति ब्रह्माकार करि सद्‌गुण बढ़ावे नित्य ही।
ज्ञानी अमानी संत कहते, ब्रह्मचारी है वही॥१२०॥

आनन्द रूपी मोक्ष ही जिसको ग्रहण के योग्य है।
उसके सिवा संसार में नहिं अन्य कुछ भी भोग्य है॥

ममता नहीं घरबार की ब्रह्माण्ड भर घर मानता।
ज्ञानी अमानी संत उसको ही गृहस्थी जानता ॥१२॥

मन रूप वन को शुद्ध करि, दुर्वासना-तृण काट के।
आनन्द की कुटिया बना, निस्संगता से पाट के॥
मैंपन रहित एकान्त चित कूटस्थ कुटिया में बसे।
ज्ञानी अमानी संत जन वनवासि कहते हैं उसे॥१२३॥

अपने सिवा सब कुछ तजे नहिं सृष्टि रक्खे दृष्टि में।
भीगा करे निज रूप की आनन्द रूपी वृष्टि में॥
विचरे सदा सद्पंथ में चित सेज ऊपर सोवता।
ज्ञानी अमानी संत मति सन्यासि सोई होवता॥१२४॥

जीता हि जग से मर मिटे जी जाय आतम तत्व में।
इस देह में ही ब्रह्म पाकर, हो निरामय चित्त में॥
आतम अनातम भेद लखि, दोनों हि से संयुक्त है।
ज्ञानी अमानी संत कहते सो हि जीवन्मुक्त है॥१२५॥

है तनु सहित अथवा रहित नहिं देह में अध्यास है।
नहिं मुक्तिका न अमुक्तिका जहं लेश भी आभास है।
द्रष्टा नहीं नहिं दृश्य जंह नहिं सत् असत् कौशल्य है।
ज्ञानी अमानी संत कहते, शुद्ध यह कैवल्य है॥१२६॥

—:—
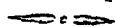
आत्मचिन्तन ।

सुख साध्यचिंतन आत्म का सनकादि मुनि का इष्ट है ।
तजि आत्म जो विषयन भजे सो दुष्ट पाता कष्ट है ॥
सब भाव तज परमात्म भज यह ही परम पुरुषार्थ है ।
आसक्ति भौतिक भाव में नर जन्म खोता व्यर्थ है ॥१२६॥

इसके सिवा नहिं अन्य कोई मुक्ति का आधार है ।
शास्त्रों पुराणों वेद का उपदेश यह हो सार है ॥
योगी यती मुनि सिद्ध गण सब का यही सिद्धान्त है ।
जो आत्म को नहिं भूलता वहि संत है वहि शांत है ॥१२७॥

संसार सागर तरण-हित गुरु पद जहाज बनाइये ।
वैराग्य अरु अभ्यास की सीढ़ी बना चढ़ जाइये ॥
मल्लाह सद्गुरु रूप पर विश्वास पूरण लाइये ।
तन मन वचन तिहुं अर्पि कर भव सिंधु से तर जाइये ॥१२८॥

जो मूढ़ नर अज्ञान वश घृत हेत, वारि विलोवता ।
नहिं हाथ वाको आय कछु आयुष्य यों ही खोवता ॥
तैसे हि नर जो आत्म तज अन आत्म में मन लावता ।
भटके अनेकों योनियों में दुख अनेकों पावता ॥१२९॥

मति हीन कोई कीर्त्ति-हित बहु पाप करि मरि जायहै ।
तप हेतु कोई मूर्ख जन, निज देह व्यर्थ गलाय है ॥

यहि भांति नर अविचार से बहु कल्प कष्ट उठाय है ।
भव त्रास मिटती है नहीं दिन दिन अधिक अधिकाय है ॥१३०॥

दिन रात कीजै दान बहु विधि लोट जग में आइये ।
काशी चिराओ शीश छुट्टी मृत्यु ! से नहिं पाइये ॥
बिनु ज्ञान अन्य उपाय से नहिं भय मरण का जाय है ।
भय सर्प का मिटता जभी जब रज्जु दृष्टी आय है ॥१३१॥

हो लक्ष्य जिसको आत्म का नहिं काल वाको खाय है ।
नहिं पाप पुण्य लगे उसे नहिं लेश दुःख उठाय है ॥
देवादि जोड़ें हाथ सब नहिं शत्रु से अपमान हो ।
पाताल नभ जल थल जहां जावे तहां सम्मान हो ॥१३२॥

संकल्प जिसका सिद्ध हो फिर कार्य्य उसका क्यों रुके ।
जिसको मिले चिंतामणी सो निर्धनी क्यों हो सके ॥
नवनिद्धि आठों सिद्धियां आगे खड़ीं सेवें उसे ।
जो आप पूरण काम हो होवे कमी फिर क्या उसे ॥१३३॥

जो हो शरण विश्वेश की सो क्यों न पूरण काम हो ।
जब रूप होवे राम का तब आप ही आराम हो ॥
विश्वास नहिं विश्वेस का बहु कामना मन मांय है ।
हतभाग्य नर भवकूप गिर जन्में मरे पछिताय है ॥१३४॥

सब काम तज परमात्म भज, हे बन्धु ! जो सुख चाहते ।
बड़ पुन्य से नर तन मिला, क्यों व्यर्थ हाय गमावते ॥

जिसने भजा परमातम को वहि साधु है वहि संत है।
शूर वही पूरा वही निर्भय वही निश्चिन्त है ॥१३५॥

ज्ञानी का विनोद।

कहते जिसे हैं ईश वह है मात्र मेरी भावना।
मैं ही न हूं तो होय किससे ईश की सम्भावना॥
प्राणी अनेकों जाति के मेरे हि सब आकार हैं।
व्यापार लाखों प्राण के मेरे हि तो व्यापार हैं ॥१३६॥

सर्वत्र मैं ही व्याप्त हूं कहिं बिम्ब कहिं आभास हूं।
मैं दर्श दृष्टी दृश्य हूं मैं दूर भी मैं पास हूं॥
सत या असत कुछ था न कुछ जो कुछ कि मैं ही हूं सभी।
हो दिव्य दृष्टी गुरु कृपा से दीखता हूं मैं तभी ॥१३७॥

मैं ही कहीं पर सूर्य्य हूं मैं ही कहीं अणुरूप हूं।
सागर बनूं मैं ही कहीं कहिं मैं ही बिन्दु-स्वरूप हूं॥
हूं चर कहीं कहिं हूं अचर कहिं ज्ञान कहिं अज्ञान में।
संसार दृष्टी से छुपा आता नहीं हूं ध्यान में ॥१३८॥

मुझ गुप्त मणि की खानि में जग दाख कर छुप जाय है।
हर एक पुर्जा हो अलग तब यन्त्र नहिं कहलाय है॥
सब भेद तत्क्षण खुल गया पढ़ते हि आतम की कथा।
जिसको समझता था बड़ा सो वास्तविक कुछ भी न था ॥१३९॥

सच्चित् तथा आनन्द में छुपसा गया था भूल से।
कहिं नाम से कहिं रूप में ढक जाय ज्यों रवि धूल से॥
उतरी अविद्या राक्षसी अब आपको मैं जानता।
जैसे गले का हार त्यों ही प्राप्त प्राप्ती मानता॥१४०॥

जब बाह्य दृष्टी छूट के, दृष्टी हुई अंतरमुखी।
तब आपको मैंने लखा, स्वच्छन्द सुखि से भी सुखी॥
एकान्त में बैठा हुआ, भी वाक्य सुन कर, धारता।
चुपचाप हूं, जिह्वा विना, तौ भी वचन उच्चारता॥१४१॥

मित्रों! कभी मत पूछना मैं जीव हूं या ईश हूं।
मैं बंध मैं ही मोक्ष हूं मैं जीव मैं विश्वेश हूं॥
मैं बाँधता, मैं ही बँधू, मैं छूटता मैं छोड़ता।
देता हूं उत्तर सर्व को नहिं मुख किसी से मोड़ता॥१४२॥

ईश्वर बनूं ऐश्वर्य्य से सम्बंध कुछ रखता नहीं।
हूं जीव पर जीवत्व पाओगे न तुम मुझमें कहीं॥
मैं बंध में बँधता नहीं नहिं मोक्ष पाकर मुक्त हूं।
मेरे किये हों कर्म सब नहिं कर्म से संयुक्त हूं॥१४३॥

चलता बहुत ही हूं अहा! फिर भी नहीं जाता कहीं।
बनता विगड़ता दीखता बनता विगड़ता हूं नहीं॥
मैं देखकर नहिं देखता हूं दीखता नहिं दीखता।
आश्चर्य्य की सीमा नहीं सब जान कर भी सीखता॥१४४॥

मैं जान कर नहिं जानता खाऊँ न कुछ खाऊँ सभी।
व्यापारि हूं सब से बड़ा व्यापार नहिं करता कभी॥
मैं हूं तथा हूं भी नहीं दोउ मुध्य हूं मैं भासता।
सर्वत्र प्रभु को जान लो जो व्याप्त होय प्रकाशता॥१४५॥

संसार-स्वप्न।

जब देखते हैं जाग कर तब लोप जग हो जाय है।
जब नींद में सो जांय अद्भुद खेल दृष्टी आय है॥
चैतन्य भूमी बीच चित अंकुर बहुत उपजाय है।
करि करि विषय की बासना चौरासि में भटकाय है॥१४६॥

यहि दीन हो दर दर फिरे दानी यही कहलाय है।
कायर यही रण से भगे यहि घाव लाखों खाय है॥
करि पुण्य जाता स्वर्ग में यहि नरक में दुख पाय है।
अभिमान करि यहि जीव हो, यहि ब्रह्म को सुख पाय है॥१४७॥

हैं भूत पांचो ब्रह्म में जग भूत का विस्तार है।
वहि ब्रह्म अणु अणु में बसा तब ब्रह्म ही संसार है॥
फल फूल पत्ते डाल जड़ सब वृक्ष के ही नाम हैं।
मथुरा बनारस द्वारिका त्यों ब्रह्म के ही धाम हैं॥१४८॥

चहुं वेद कहते हैं यही षटशास्त्र ये ही मानते।
कोविद कवी ऋषि सिद्ध मुनि योगी सभी यह जानते॥

कुंडल कनक है एक ही नहिं भेद रंचक पाइये।
जिसका हृदय ही बंद हो कैसे उसे समझाइये ॥१४६॥

माया बनावे विश्व को माया ही जीव बनावती।
त्रयलोक औ चौदह भुवन रचना वही दिखलावती॥
निज रूप को देवे छुपा चैतन्य को बहकावती।
देवे असत् को सत् बना सत् को असत् दर्शावती ॥१५०॥

इस देह के सोधे बिना नहिं हाथ आता सार है।
पढ़िये उमरभर शास्त्र बहु मिलता न जग का पार है॥
जो मूर्ख तन्दुल फेंक कर सुख मान छिलका खाय है।
हो भूख उसकी दूर कब, बिनु अर्थ जन्म गंवाय है ॥१५१॥

इन्द्री विषय के स्वाद में जो मूढ़ जन आसक्त हैं।
गुरुज्ञान बिन विक्षिप्त चित होता कभी नहिं तृप्त हैं॥
माया बिदे लिपटा हुआ सुत नारि धन में धावता।
नर देह पाई पुण्य बड़ बिनु अर्थ उसे गमावता ॥१५२॥

बातें करे बहु ज्ञान की नहिं तत्व का पहचानता।
तोता वचन उच्चारता नहिं अर्थ उनका जानता॥
मैंपन न त्यागे जब तलक भव-बंध से नहिं छूटता।
दाने नहीं होते अलग तागा न जब तक टूटता ॥१५३॥

जो देह होवे ज्ञान बिनु अपवित्र अति ही मानिये।
बहु भूत प्रेत पिशाच गृह शमशान सम पहिचानिये॥

लोहू त्वचा मेदा तथा मल मूत्र का भंडार है।
नहिं काम आवे अंत में पशु पक्षि का आहार है ॥१५४॥

धिक् जन्म को धिक् कर्म को धिक्कार बुद्धीके लिये।
धिक्कार धन धिक्कार कुल धिक्कार पदवी के लिये॥
रे नाथ! जिन को पाय नर संसार से नहिं मुक्त हो।
निज कर्म तजि इन दुर्गुणोंमें हाय! को? आसक्त हो ॥१५५॥

मन-गति।

रे मूर्ख मन! क्यों दौड़ता, आलस्य ईर्ष्या भ्रान्ति में।
क्यों? पाप वृत्तिमें दौड़ कर, तू खलल करता शान्तिमें॥
क्षणमें सुतल, जाता वितल, क्षणमें रमै आकास में।
रे मूर्ख मन, क्या जान कर अस्थिर न रहता पास में ॥१५६॥

हा! धर्म में तू दौड़ कर रे!! पाप में चित लाय है।
नाना विषय को भोग कर चौरासि में भटकाय है॥
क्षणमें यहां! जाता वहां! क्षणमें रहै तू आस में!
रे मूर्ख मन! क्या जान कर अस्थिर न रहता पास में ॥१५७॥

बनता विलासी है कभी कभि धर्म में मन लाय है।
हा! ध्यान दे शुभ कर्म में तू विषय में रम जाय है॥
क्षण में रमे! क्षण में भगे! नहिं ध्यान दे उपहासमें।
रे मूर्ख मन! क्या जान कर अस्थिर न रहता पासमें ॥१५८॥

मृग भांति, क्यों तूं दौड़ कर, यह भ्रांतिमें, लिपटाय है ।
कर कर मनन क्यों मन मुखी रे मन ! सदा तूं धाय है ॥
क्षणमें रमै ! क्षण में थमै ! क्षण में भगै तूं वास में ।
रे मूर्ख मन ! क्या जान कर अस्थिर न रहता पास में ॥१५६॥

होता विषय नहिं ठीक है पर चित उसी में लाय है ।
सब जान कर भी मूर्ख क्यों ! बहुवार धोखा खाय है ॥
हा ! पाप पथ में प्रवृत हो तूं मग्न है विश्वास में ।
रे मूर्ख मन ! क्या जान कर अस्थिर न रहता पास में ॥१६०॥

जिसका तुम्हें अभिमान है वह काम कछु नहिं आयगा ।
आकर अचानक काल इक दिन सत्यही खा जायगा ॥
क्षण हर्षमें ! क्षण कर्ष में ! क्षण त्रस्त होता त्रास से ।
रे मूर्ख मन ! क्या जान कर अस्थिर न रहता पासमें ॥१६१॥

क्यों फूल कर इस देह पर तूं कर्द में फँस जाय है ।
सब जान कर भो दुष्ट अब क्यों ? कलुषमें ही धाय है ॥
क्षण कर्ममें ! क्षण धर्ममें ! क्षणमें पड़ै यम फासमें ।
रे मूर्ख मन ! क्या जान कर अस्थिर न रहता पास में ॥१६२॥

धार्य्य अभिरुचि की कभी कभि दुर्गुणों को पाय है ।
अब तक भटकता भूलता क्यों शान्ति पथ नहिं जाय है ॥
क्षणमें क्रिया ! क्षणमें त्रिया ! क्षण महँ लगै अभ्यासमें ।
रे मूर्ख ! मन क्या जान कर अस्थिर न रहता पासमें ॥१६३॥

इन झंझटों को त्याग कर अब दुर्गुणों को दूर कर।
ज्ञानी अमानी भाव को तूं संचना भर पूर कर॥
सम्पूर्ण कटुपथ त्याग दे नहिं चित लगा नित रासमें।
रे मूर्ख मन! क्या जान कर अस्थिर न रहता पासमें॥१६४॥

रे मन! भटकना छोड़ कर शुभ कर्म में लवलीन हो।
स्वाध्याय चिंतन ईश का उस प्रणव में परवीन हो॥
विभुनाथ! क्यों तूं भूल कर हा! ध्यान देता नासमें।
रे मूर्ख मन! क्या जान कर अस्थिर न रहता पासमें॥१६५॥

मन को उपदेश।

सुन सीख मन, मत मूर्ख बन ममता जगत की छोड़ दे।
हा! मालिन्य ईर्ष्या द्वेष का नाता सभी से तोड़ दे॥
कर चिंतवन परब्रह्म का चित वृत्ति उस में जोड़ दे।
नहिं देह तूं प्रिय काल में भाड़ा अहं का फोड़ दे॥१६६॥

ज्यों नाव कागज की बनी जलसे तुरत गल जाय है।
तनु बाग त्योंहीं सूख इक दिन धूल में मिल जाय है॥
क्यों देह अपनी मान कर आसक्त उस में होय है।
क्यों पाप का क्यों पुण्य का बिनु अर्थ बोझा ढोय है॥१६७॥

सब वस्तु यहिं की यहिं रहे संग पाप केवल जायगा।
होगा नरक का कीट तूं तब अन्त में पछितायगा॥

ज्यों शीशि कच्चे कांच की लगते ही ठोकर टूटती ।
त्यों देह कच्ची कांच सम है आज कलही छूटती ॥१६८॥

संबंध तनु का जीव का कब तक रहा कितना भला ।
क्षण मे झटक वन में पटक यह जीव जाता है चला ॥
जड़ तनु न होवे जीव क्यों तूं जानकर भी भूलता ।
एकत्र करता रात दिन फिर मूर्खता पर फूलता ॥१६९॥

जो जो यहां आ जन्मता सो सो यहां से जाय है ।
आकर यहां से जाय नहिं ऐसा न कोई उपाय है ॥
गंधर्व सुर राक्षस मनुज चर या अचर जितने हुये ।
कोई नहीं है बचसका, सब कालने आ खा लिये ॥१७०॥

छोटा युवा बूढ़ा बड़ा सब काल के हैं गाल में ।
मत महल आशा का चुनाकर, फँस कभी जंजाल में ॥
यह महल बालू पर चुना क्षण मात्र में गिर जायगा ।
आ काल काले नाग सम भक्षण तुझे कर जायगा ॥१७१॥

है कार्य्य किसका शेष कितना काल यह न विचारता ।
आकर अचानक बाज सम नर नारि को है मारता ॥
विकाल डाढ़ों मध्य सब ही जीव जंतू दाबता ।
तब तक दया है काल की जबतक तुम्हें नहिं चाबता ॥१७२॥

हे मूर्ख मन ! दिन रात यह व्यवहार तुझको दीखता ।
बहु बार धोखा खा चुका फिर भी नहीं है सीखता ॥

आसक्त विषयों में हुआ बहु भांति दुःख उठाय है।
जो मूर्ख कूटै है भुसी चावल कहां ते पाय है ॥१७३॥

नहिं श्वेत होवे कोयला दिन रात मल मल धोइये।
निकले नहीं घृत वारि में करि यत्न लाख विलोइये॥
नर देह रत्न अमूल्य है क्यों मूर्ख व्यर्थ गँवाय है।
सुनि वाक्य गुरुका बोधप्रद सन्मार्ग क्यों नहिं जाय है॥१७४॥

हे मूर्ख मन! अब छोड़ दे दो दिन उजेला पायगा।
हा! ध्यान दे! चैतन्य हो! आ काल तुझको खायगा॥
विशुनाथ! करि करि यत्न लाखों हाय! सब समझाय है।
सब देखता रे दुष्ट मन! अब तक तुम्हें नहिं भाय है॥१७५॥

माया।

है कौन सा वह दृश्य जो सारे भुवन में व्याप्त है।
आकाश पृथ्वी भी नहीं जिसके लिये पर्याप्त है॥
है कौन सी वह शक्ति, प्यारे! जो दिखाती सब कहीं।
माया वही! माया वही! माया वही! माया वही॥१७६॥

"चैतन्य को जड़ करदिया, जड़को करे चैतन्य है।
अद्भुत अलौकिक दृश्य का माया तुम्हारा धन्य है॥
तूं ही जुदा करके मिलाती, मिला कर करती कहीं॥
माया तुही! माया तुही! माया तुही! माया तुही॥१७७॥

आकाश में जल में हवा में विपिन में क्या बाग में।
घर में हृदय में गांव में, तरु में तथैव तड़ाग में॥
है कौन सी वह शक्ति, जो है एक सी रहती वही॥
माया वही! माया वही! माया वही! माया वही॥१७८॥

॥ भारत ॥

काशी पुरी अरु द्वारिका जहँ बंध-सेतू राम का।
घर घर जहां होती कथा अशरण शरण हरि श्याम का॥
त्रिकूट विंध्या अर्वली फैले मनोहर गिरि जहां।
गिरनार की प्यारी छटा मन मोह लेती है जहां॥ १७९॥

रम्य उपवन काननों में कूक कोकिल की सदा।
सर्वत्र हरियाली बनी ऋतु-राज रहता सर्वदा॥
गंधर्व किन्नर भाग्य पा निज नृत्य करते हैं जहां।
गूंजाति गूंजें कीर की लखि धीर छुट जाता जहां॥१८०

आता न जिस की ऊपमा अमरा तथा अलका सभी।
थे चाहते सुर जन्म को जिस भव्य भूमी पर कभी॥
धोता चरण रत्नेश नित आनन्द उपवन है जहां।
भगवान लीलामय कभी नर देह से प्रगटे जहां॥ १८१॥

सरजू तथा वह पुनपुना अरु पावनी गंगा जहां।
वहि देश भारत-वर्ष है! फैला हिमालय गिरि जहां॥

भूलोक को रचते समय विधि सृष्टि के आवर्त में।
कीन्हा प्रथम नर सृष्टि का विस्तार ब्रह्मावर्त में ॥१८२॥

सम्पूर्ण देशों से अधिक इस देश का उत्कर्ष है।
विधि सृष्टि में सबसे प्रथम सिरमौर भारतवर्ष है॥
मुख बाहु उरु पग से जिन्हें विधि सृष्टि कीना था वहां।
वे आर्य्य गण सानन्दता से वास करते थे यहां॥ १८३ ॥

धैर्य्य-प्रिय दानी तथा ज्ञानी अमानी सूर थे।
वेदाङ्ग विद्या, न्याय पथ विज्ञान में भरपूर थे॥
था देखता सारा जगत आचार्य्य रूपी दृष्टि, से।
जीवन बिताते थे सभी आनन्द रूपी वृष्टि में॥ १८४ ॥

प्राचीन ऋषियों की एक झलक।

इस भव्य भारत पुण्यदायी, शान्ति भूमी में कहीं।
जहँ क्लेश दुःख त्रिताप का भय दृष्टि होता था नहीं॥
जिस रम्य उपवन में सदा थी कोकिला मृदु बोलती।
पाठक! परस्पर प्रेम से थी सिंहनी मृग डोलती॥ १८५ ॥

उन काननों में शान्ति-रत ऋषि सत्य धर्मादिक भरे।
करते रहें शुभ यज्ञ नित स्वर्गीय भावों से भरे॥
प्रौढ़त्व लखि सुरपति जहां था भाविता का दास हो।
उद्योग करता था सदा ऋषि शक्ति सारी ह्रास हो॥१८६ ॥

गोस्वामियों की वह कथा सर्वोच्च और अपार है।
उनकी कठिन करणी निरख, चेला सकल संसार है॥
जिनकी तपस्या को निरख थे इन्द्र भी थर्रा गये।
थे भेद खोले योग के कितने बड़े कितने नये॥ १६६॥

संसार मध्य अतीत के, हैं चिन्ह कितने जगमगा।
मन बुद्धि के आकाश में हैं जगमगाते चन्द्रमा॥
ज्ञानी हुए योगी हुए थे भक्त कितने हो गये।
निज भक्ति का आदर्श अच्छी भांति जग में बो गये॥ १६७॥

अब तक चला आता वही ऋषि मार्ग अपने लक्ष्यमें।
देखो लटकता है यहो, कर्त्तव्य उनके वृक्ष में॥
गोस्वामि यति कुल थे यहां जो धर्म के अवतार थे।
ये वेद सन्यासी ही भारत वर्ष के शृंगार थे॥१६८॥

* इन्द्र को भी शाप देकर जो सहस भग कर दिया।
पर विनय से सन्तुष्ट हो कर मुक्ति का भी वर दिया॥

---

* नोट—महर्षि गौतम जी की स्त्री अहिल्या अत्यन्त सुन्दरी थी, उस की सुन्दरता देख इन्द्र मुग्ध हो गये। एक दिवस इन्द्र ने चन्द्रमा से कहा कि तूं मृगया का भेप बना कर गौतम ऋषि के कुटी के निकट जाकर अर्द्ध रात्री के पश्चात् बोलना। तुम्हारे बोल को सुन कर ऋषि प्रातः काल होता हुआ जान भागीरथी तट पर चले जायेंगें। और मैं गौतम जी का भेष धर अहिल्या से जा मिलूंगा। चन्द्रमा ने इन्द्र के कथनानुकूल रात्री में मृग भेष धारण कर गौतम ऋषि के कुटी समीप जाकर बोलने लगा—गौतम जी मृग

गोस्वामि गौतम का तपोवल विश्वमें विख्यात है।
गोस्वामि शृंगी का विषय भी पूर्णतः प्रख्यात है ॥१९९॥
"ऐ राज्य मद आया है क्या अब शाप देता हूं तुम्हे।
चैतन्य हो! चैतन्य हो! तक्षक डसेगा यह तुम्हें ॥
सप्ताह अवगत होने दो कोई बचा सकता नहीं।
मम क्रोध रूपी अग्नि से कोई छुड़ा सक्ता नहीं॥ २०० ॥

के शब्द को सुन प्रभात हुआ जान स्नानादि के हेतु गंगा के तट पर चले गये।

इधर इन्द्र अपनी इच्छा पूर्ती के हेतु महर्षि गौतम का भेष बना कर अहिल्या के निकट गये और अपना अभिप्राय प्रगट किये। उधर गौतमजी जब गंगा किनारे पहुंचे तो देखा कि गंगा शयन कर रही हैं—रात्री बहुत बाकी है। क्या कारण है —? ध्यान कर देखने से सर्वज्ञ ऋषि को इन्द्र की सब बातें मालूम हो गई। वे कुटी पर लौट आए और द्वार खोलने के हेतु अहिल्या को पुकारे उन के पुकार को सुन कर इन्द्र घबड़ाया और भयभीत होता हुआ घर से निकला ऋषि ने उसे देख यह श्राप दिया कि जा तुम्हारे शरीर में हजार भग हों। इन्द्र बहुत प्रार्थना कर और ऋषि के शरण में पड़ गया तथा क्षमा मांगने लगा पश्चात् ऋषि उसके प्रार्थना से प्रसन्न हो उसके मुक्ति होने का भी उपाय कह दिये।

1 एक समय राजा परीक्षित वन में मृगया ढूढ़ते २ गोस्वामी विशीड ऋषि के आश्रम में पहुंचे ऋषि मृगछाला पर बैठे प्राणायाम में मग्न थे राजा ने उनके कर्त्तव्य को विपर्यय समझ अज्ञान वश एक मरा हुआ सर्प उनके गले में डाल नगर में चले आये। कुछ ब्रह्मचारी लोग जो वहां पर खेलते हुये यह दृश्य देख रहे थे, कालिन्दी के तट पर शृंगी ऋषि से जाकर कह सुनाये। जहां वे खेल रहे थे, इसी घटना को सुन उन्होंने राजा परीक्षित को श्राप दिया था।—

वह वशिष्ठ‡ की गम्भीरता उनकी धरा सीधीरिता।
खड्ग ले सन्मुख रिपू पर, धीरता गम्भीरता॥
अन्याय रिपु का सह लिये छोड़े नहीं निज धीरता।
बस देख लो यह कुटिचकों की धीरता गम्भीरता॥२०१॥

पूर्ण मुनिवर योग ज्ञाता ज्ञान दायक थे यही।
वेद सन्यासी हि सत्तम विधि विधायक थे यही॥
विश्व के उपकार हित ही जन्म लेते थे सदा।
सात्विक गुणों से युक्त ही वे बीज बोते थे सदा॥२०२॥

विश्व के उपकार हित का कार्य्य करते थे सभी।
उपदेश देते विश्व में जब जब समय पड़ती कभी॥
वे दूर रहते थे सदा आलस्य तृष्णा भ्रान्ति से।
जीवन विताते थे सदा सन्तोष पूर्वक शान्ति में॥२०३॥

---

‡ राजर्षि विश्वामित्र अपने को तपस्या के बल से महर्षि कहलाना चाहते थे, अनेक ऋषि मुनि उन्हें ब्रह्मर्षि कहते थे पर भगवान वशिष्ट जी उन्हें राजर्षि ही कह कर पुकारा करते थे, यह बात विश्वामित्र को अच्छी नहीं लगती थी। अतएव एक रोज वह खड्ग लेकर अन्धकार रात्री में वशिष्ठ जी को मारने चले, इधर वशिष्ठ जी अपने योगबल से जान गये कि विश्वामित्र आ रहे हैं। उन्हों ने उनके स्वागत के हेतु सब सामग्री प्रस्तुत करने को अपनी स्त्री से कहा। विश्वामित्र उनके घरके पास छिप कर सब सुन रहे थे। जब उन्होंने वशिष्ठ जी को ऐसा निपुण देखा तब खड्ग फेंक कर शरणागत में आ गिरे और क्रोध मोह राग छोड़ने की शपथ किये—

वेद वाक्यों में निरन्तर ध्यान रखते थे सभी।
आत्मिक बलों से पूर्ण हो शुभ कार्य्य करते थे सभी॥
था गर्व नहिं कर्त्तव्य पर दम्भादिकों से अमूल थे।
सात्विक गुणी गोस्वामि गण भवभूति के समतूल थे॥२०४॥

सत्संग उन का श्रेष्ठ था वे पूर्ण ज्ञानी थे सभी।
नहिं त्यागते थे धर्म को यदि प्राण भी जावे कभी॥
सब लोक सुख थे भोगते अर्द्धाङ्गिनी के साथ में।
कर्त्तव्य कर सिद्धी भी रखते थे सदा निज हाथ में॥२०५॥

गोस्वामिनाथ वशिष्ठ जी रघुवंश से पूजित हुए।
वे अमर हैं, गुण गण सकल, संसार में गूञ्जित हुए॥
देखो पुराणों में अनेकों कर्म उनके गूँजते॥
आदर्श देव! वशिष्ठ को संसार सारा पूजते॥२०६॥

उन के तपोबल से सदा विधि अङ्क भी मिटता रहा।
पद पीठ पर वह सर्वदा नृप-मणि मुकुट झुकता रहा॥
इन कुटिचकों के कीर्त्ति का वर्णन अतीव अपार है।
सारे जगत में व्याप्त है गुण गा रहा संसार है॥२०७॥

ब्राह्मण।

षटकर्म में सन्तति लगे थे धर्म पथ पर सर्वदा।
भूलभी अपमार्ग में नहिं पैर देते थे कदा॥

ब्रह्मचर्य्य को धारण किये श्रुति मार्ग में लवलीन थे।
स्वाध्याय चिंतन ईशका उस प्रणव में परवीन थे ॥२०८॥

शुभ कर्म की सम्पन्नता सद्धर्मता लखि सर्वदा।
पाठक ! जगत था पूजता उन विप्र वर को सर्वदा ॥
इतिहास गाता है अमित गुण विप्रवर भृगुराज के।
जिन के पगों से नीच था हृद्धाम श्री हरिराज के ॥२०९॥

*वाल्मीक जी ब्राह्मण हुए जिनका महान प्रताप था।
जिनके तपों के सामने पानी-अगिन का ताप था ॥
थे कपिल जी ब्राह्मण यहीं शुभ सांख्य शास्त्र प्रसिद्ध है।
जाते तरत भव सिन्धुनर भूभार नाशक सिद्ध है ॥२१०॥

---

* पहले वाल्मीक जी लूट पाट किया करते थे। जंगल के राह से कुछ दूर हट कर बैठे रहते थे—जब कोई मनुष्य (पथिक) उस राह से जाता दिखलाई पड़ता था तब ये उसे मारकर सब धन छीन लेते थे। और इसी से अपना तथा अपने परिवार का भरण पोषण करते थे। जब एक महात्मा के द्वारा इन्हें कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ—तब ये योग साधन में लगे। एकान्त में चितवृत्ति निग्रह कर प्रणव तथा स्वाध्याय करने लगे—इस प्रकार योग मार्ग में लवलीन रहते २ ये पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हो गये। यहां तक कि आश्रम में लव को न पाकर कुश का पिंड बना स्वयं पंचभूत तथा जीव दे कुश की सृष्टि रचदी।

*जमदग्नि-सुतका दृश्य भी है वीररस से ही भरा।
जो वार दश अरु सात तक क्षत्रिय रहित कीने धरा॥
श्री मान भृङ्गी का तपोवल शान्ति दांयी सिद्ध है।
पातंजली कृत योग सूत्रम पूर्ण रूप प्रसिद्ध है॥२११॥

वे थे निकेतन सत्य के आचार्य्य थे संसार में।
थे नाव, दुखिया पथिक की इस घोर पारावार में॥
था वाक्य होता सत्य सब, जो कुछ निकलता था सभी।
संसार कहता था उन्हें नर देव या भूसुर कभी॥२१२॥

था विप्र गण में दिव्य गुण वर्णन अतीव अपार है।
श्रुति शास्त्र दर्शन न्याय ही देता सदा शुभ सार है॥

---

* जमदग्नि जी जंगल में रह कर तपस्या किया करते थे। एक दिन उन्होंने इन्द्र के यहां जाकर काम धेनु मांग लाये, और राजा सहस्रावाहु को सैन्य तथा सर्व कर्मचारी समेत निमंत्रण दे आये राजा के आने पर उसी कामधेनु के द्वारा सब को भोजन कराये। राजा यह दृश्य देख परम विस्मित हुआ और महात्मा से वही कामधेनु मांगा। महात्मा ने कहा कि यह हमारी नहीं, परन्तु यह इन्द्रकी है; हम इसे इन्द्र से मांग लाए हैं, मैं नहीं दे सकता, राजा क्रोधातुर हो अपने सेवकों के द्वारा कामधेनु खुलवा लिया। ऋषि अत्यन्त दुखित हुये और सहस्त्रावाहु के साथ कुछ दूर तक प्रार्थना करते हुए चले गये वहाँ नृप ने इन का सर काट लिया जब यह बात परशुराम जी को मालूम हुई तब उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि मैं इस पृथ्वी को क्षत्रिय रहित कर दूंगा। एवं सहस्त्रावाहु को मार कामधेनु इन्द्र को भिजवा दिये, और १७ वार धरा क्षत्रिय रहित कर डाले।

विश्वनाथ! भृगुवर का चरण उस ईश से भी उच्च था।
विप्रों! तुम्हारे पूर्वजों के सामने सब तुच्छ था ॥२१३॥

इनके अमित, तपतेज से जग भस्म हो सक्ता रहा।
सारा समुन्दर नीर बिनु हो सूख जा सक्ता रहा॥
जो जीव अरु ये भूत बिनु भी सृष्टि रच सक्ते रहे।
अपने अलौकिक तेज से विधि को प्रगट करते रहे॥२१४॥

क्षत्रिय।

उन क्षत्रियों के पूर्व का वह लक्ष कैसा उच्च था।
जो धर्म के सन्मुख धरा धन स्वर्ग सारा तुच्छ था॥
थे पूर्णतः जो क्षत्रधारी वीर क्षत्री जाति में।
डबडबाते पात्र जिनकी वीरता की ख्याति से ॥२१५॥

आत्मिक अलौकिक धीरता किस भांति उनने प्राप्त की।
निज वीरता, गंभीरता, भूगोल भर में व्याप्त की॥
पूज्य पृथु भागीरथी दशरथ तथा आल्हा हुये।
निज धर्म रक्षा हेतु नाना कष्ट संपादन किये॥२१६॥

शपवीर *विक्रम थे नृपति अपने अमित अभ्याससे।
जाकर मिले जो सूर्य्य से नीरव अलख आकासमें॥

*शकारी विक्रमादित्य उज्जैन के राजा थे, परन्तु सारा संसार उनके पद पीठ पर अपना मणि जटित मुकुट स्पर्श करता था—एक समय एक ब्राह्मण ने आकर इन्हें कहा कि उत्तर दिशा में एक तालाब है उस तालाब में एक जाट

यह वीर क्षत्री जाति की सुन्दर कथा अनमोल है।
बिसुनाथ ! देखो क्षत्रियोंके हाथ में भूगोल है ॥२१७॥

क्षत्रिय हुये अर्जुन चढ़े थे लक्ष मारे मीन का।
जो सर्वदा ही पक्ष रक्खे कष्ट में भी दीन का॥
श्रीमान पारथ नृपतिकी करणी कठिन किस मुख कहूं।
क्या ! कर्म वीर नरेश के शुभ नाम पर चुपके रहूं ॥२१८॥

उन क्षत्रियों के तेज से त्रैलोक्य थर्राता रहा।
जिनके गदाके घात से गिरि-राज हर्राता रहा॥
किस जाति ने इनके सदृश विद्वान व्रतधारी किये।
किस देश की किस जाति में दृष्टांत ऐसे हैं दिये ॥२१९॥

क्षणमें अगिन मय विश्वको पानी पवनमय कर सकें।
थे वीर क्षत्री बंधुओं पुनि और सारे हर सकें।

है जो प्रभात काल से बढ़ता २ मध्याह्न समय में सूर्य्य के निकट पहुंच जाता है। सूर्य्य कुछ देर उसपर ठहरते हैं अर्थात् लम्ब रूप से रहते हैं-बाद जब पश्चिम दिशा को चलने लगते हैं तब जाट भी शनैः शनैः घटता घटता पुनः जल में मग्न हो जाता है। ब्राह्मण की यह बात सुन अपने ताल और बैताल दोनों सेवकों को ले वीर विक्रम उस जाट पर प्रभातः काल बैठ गये जब वह जाट सूर्य्य के निकट दोपहर को पहुंचा-तब वे भस्म हो गये-सूर्य्य ने यह भस्म देख अमृत द्वारा सजीव किया— पश्चात् विक्रमादित्य सूर्य्य की बहुत स्तुति किये-तब भगवान् आदित्य अत्यन्त प्रसन्न हो चार मणि दान दिये-विक्रमादित्य नगर में आ उन्हें दान कर दिया—

हाँ ! थे शब्द वेधी लक्ष वेधी वाण विद्या विज्ञ थे ।
पानी पवन पावक तथा वरुणादि शास्त्रा विज्ञ थे ॥२२०॥

सारा जगत था पास जिनके न्याय हित आता रहा ।
यूनान इटली सर झुका आनन्द नित पाता रहा ॥
फ्रांस, लंका चीन जावा वोर्नियो भी धाय कर ।
आकर सदा झुकता रहा, पद पीठ में लिपटाय कर ॥२२१॥

है धन्य क्षत्री जाति जिस में राम का अवतार है ।
जिनके चरणके चिन्ह लखि,कृत कृत्य सब संसार है ॥
इस जातिमें ही भीष्म ज्ञानी कर्ण शश्त्राचार्य थे ।
वह पूर्ण विजयी भीम से सहदेव आदिक आर्य थे ॥२२२॥

वैश्य ।

हां ! जो थे विधाता उदरसे उत्पन्न वैश्य समाज थे ।
शैशव दशामें पूर्णतः नैपुण्य थे शुभ काज में ॥
था सत्य से ही मित्रता-पाखंड से था शत्रुता ।
थी चंचला की शक्ति की छाई अनूप विचित्रता ॥२२३॥

थे लक्ष्मी के भक्त वे घर में विराजी लक्ष्मी ।
गृह में रमा थी लक्ष्मी मन में विराजी लक्ष्मी ॥
थी वैश्य कुल में सब तरह से साज साजी लक्ष्मी ॥
सौन्दर्य्य द्वारा वदन ऊपर खूब साजी लक्ष्मी ॥२२४॥

भंडार खाली कर दिये जब प्रश्न आया कर्मका।
रक्खा जिन्होंने ध्यान था राणा प्रताप के धर्म का॥
वे काम अपना भी करें पर-काममें आते रहे।
श्री लक्ष्मी के संग-गुण जगदीश का गाते रहे॥२२५॥

शूद्र।

पैर द्वारा शूद्र का तन था जिसे विधि ने दिया।
शूद्रत्व वाला कर्म में इन्कार था किसने किया॥
पूर्णतः निज कर्म में सन्तत सदा लवलीन थे।
द्विजातियों के प्रेम सेवा में सदा परवीन थे॥२२६॥

भयभीत होते थे सदा लखि वीर, ब्राह्मण को कहीं।
चलते झुकाते शीश नित-वे क्रोध करते थे नहीं॥
हां! उपरोक्त वर्णों के सदा मर्य्याद के अनुराग में।
सब कर्म करते थे सदा पाकर अमित सौभाग्यसे॥२२७॥

स्त्रियाँ।

सुरवत रहे वे पुरुष थे थीं देवियां भी नारियां।
सत्तीत्व से विधि अंक भी थीं मेटतीं सुकुमारियां॥
थीं मोह माया वश नहीं लोभादिका नित त्याग था।
निज धर्म में अनुराग था, कर्त्तव्य में ही राग था॥२२८॥

अनुसूइया तथा सीता किया पत्तीत्व वाला योग था।
निज शक्तिका संसार को दिखला दिया उद्योग था॥

कुंती, अहिल्या, द्रौपदी, तारा तथा मंदोदरी ॥
सीता सती सी थी जहां, वह, प्रेम मय पतिव्रत भरी ॥२२६॥

लक्ष्मी नहीं सर्वस्व तज पत्तीत्व रक्खेंगे यहीं ।
भूखों मरें पर सत्य हम सत्तीत्व छोड़ेंगे नहीं ॥
कहती सदा थीं देवियां अपने हृदय की भावना ।
शव† को जिलाया सत्य यह है धन्य धर्म निवाहना ॥२३०॥

पत्तीत्व सिद्ध विचार ही सिद्धान्त उनका था सदा ।
पति प्रेम पूजा अर्चना धर्म्माचरण था सर्वदा ॥
जिसके अलौकिक शक्तिसे अगमा निगमकी योग्यता ।
नित प्राप्त करती थीं सदा आनंदनद की योग्यता ॥२३१॥

विद्वान‡ वे ऐसी हुई, श्रुति की ऋचाएं रच गयीं ।
ब्रह्मचर्य्यभी धारण किया मनसिज छलीसे बचगयीं ॥
सतियां हजारों ही हुई ये नारियों निज तेज में ।
पति संग सोई अग्नि में, शमशान वाली सेज में ॥२३२॥

उन स्त्रियों ने भी किया संग्राम अति विकराल था ।
वह अकथ है वह अजब है उस समयका जो हालथा ॥

---

† सावित्री सत्यवान की स्त्री थी जब सत्यवान जंगल में मर गये थे तब सावित्री न अपने सतीत्व के बल से उन्हें जिलाया था ।

‡ जब स्वामी शंकरा चार्य्य और मंडन मिश्र के साथ शास्त्रार्थ हुआ था तब मंडन मिश्र की स्त्री ही मध्यस्थ बनाई गई थी ।

जिस धनुषको कोई उठा सकता नहीं संसार में।
उस शिव धनुष को जानकीने रख दिया था द्वारमें ॥२३३॥

पतिसंग सारे सुख किये पतिसंग सारे दुःख सहे।
पतिसे कुपित होकर कभी, कड़वे वचन कब थे कहे॥
पर्दा दिया तो आपको जाना किसी ने खलक में।
लड़ने गई तो फिर हजारों वीर काटे पलक में ॥२३४॥

थी बालिकाओं में भरी, मर्य्याद रक्षक लालिमा।
नव यौवनाओं में नहीं पाई, विपथ की कालिमा॥
थीं नारियों में रक्त पाठक! धर्म और स्वभावका।
था मोह प्राण न राज्य का, था मोह अपने धर्मका ॥२३५॥

ब्रह्मचर्य्य।

वन वन विपिन में वन्य गण का नित्य होता शोर है।
लखि श्याम भयदायी घटा जँह नृत्य करता मोर है॥
मृग के लिये जँह वेणु रोता छेद छाती में किये।
खिलते तड़ागों में वनज जँह भृङ्ग के सुखके लिये ॥२३६॥

जहँ ग्रीष्म वर्षा शरद सारे समय के अनुकूल हैं।
सर्वत्र हरियाली बनी जहँ दिव्य शोभा-मूल हैं॥
बह रहीं नदियां जहां नित शान्ति रूपी चाव से।
सानन्द जल निधि है उमड़ता प्रेम रूपी भाव से ॥२३७॥

अस रम्य रम्यारण्य में करते रहे ऋषि साधना।
"साहित्य की सेवा लिये बटु! देशकी हितकामना॥
निज धर्म का पालन तथा उस सत्य के अभ्यास में।
जाते रहे सानन्द से वे सर्वदा ऋषि पास में" ॥२३८॥

इन्द्रिय दमन निज वीर्य रक्षा शांति रूपी भाव से।
करते रहे सानन्द हो; हार्द्दिक विषय की चाव से॥
वे भक्ति संयम ध्यान पूजन कीर्तनादिक सर्वदा।
पाठक! विताते थे समय संसर्ग विद्या में सदा ॥२३९॥

साहित्य कविता शास्त्र विद्या वेद अरु विज्ञान में।
पौराण पैंगल न्याय दर्शन योग विषयक ज्ञान में॥
नैपुण्य हो तत्वादि विषयक ज्ञान पाते थे वहाँ।
लखि तत्वगति निजआत्म का सम्बोध करतेथे जहाँ ॥२४०॥

वे आत्म परिभव भाव तजि भगवान को भजते रहे।
प्रतिबिम्ब प्यारा प्राप्त कर सानन्द यों कहते रहे॥
वहि व्याप्त है सब में सदा वहि सृष्टि का आधार है।
है ब्रह्म अणु अणु में बसा तब ब्रह्म ही संसार है ॥२४१॥

यहि भांति व्रत धारी तथा बलवीर विज्ञानी बने।
जाते रहे, निज जन्म भूमी शान्तिता से सन सने॥
आत्मिक तथा कायिक बलोंका श्रोत बहताथा उन्हें।
दुखखेद क्लेश त्रिताप तंकनहिं पास जाताथा जिन्हें ॥२४२॥

देखो पुराणों में अनेकों कर्म उनके गूंजते।
ब्रह्मचर्य्य के आदर्श नारद को सभी जन पूजते॥
सब विश्व करता आरती हनुमान सच्चेवीर की।
रोमाञ्च होता है सदा सुनि वाक्य जिनके धीर की॥२४३॥

श्री मान दत्तात्रेय जी भी पूर्ण ब्रह्मचारी हुए।
कर प्राप्त व्यापक ब्रह्म पद जो पूर्ण विज्ञानी हुए॥
थी भीममें क्या शक्ति किसकी, जो धराथी लात से।
फटती, तथा गिरि चूर्ण होता था गदा के घात से॥२४४॥

जिस ब्रह्मचर्य्य विधान से श्री राम जो विजयी हुये।
जिस ब्रह्मचर्य्य विरोध से, लंकेश से हत श्री हुये॥
श्री लक्ष्मण ने वध किया, घननाद सा माया धनी।
उस ब्रह्मचर्य्य स्वरूपकी, महिमा स्वयं अनुपम बनी॥२४५॥

कर में कुठार सँभाल कर, संसार सर्व सुधार को।
अभिमान-रत-नृप क्षत्रियों के, गर्व सर्व प्रहार को॥
जब बाल ब्रह्मचारी महीश्वर, परशुराम थे डट गये।
तब एक के द्वारा, हजारों सैन्य युत नृप, कटगये॥२४६॥

अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की रतिनाथ को माना नहीं।
जीते असंख्य विपक्ष वाले, हार को जाना नहीं॥
श्री कृष्णजी से भी लड़े, निजमृत्यु स्वयं कहकर मरे।
श्री भीष्म ब्रह्मचारी हुये, शर-सेज पर सोये, हरे॥२४७॥

भारी भरोसा ब्रह्मचर्य्य विधान का मन में लिया।
युवराज अंगद ने, दशानन-सभा-सम्मुख प्रणकिया॥
दरबार में कोई चरण उनका उठा पाया नहीं।
ब्रह्मचर्य्य-महिमा से सदा सम्मान मिलता सब कहीं॥२४८॥

पूर्वजों की एक झलक।

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध आर्य्यावर्त भारतवर्ष है।
पूर्वजों के गुणों से यह हो रहा उत्कर्ष है॥
पूर्ण मुनि वर योग ज्ञाता ज्ञान दायक थे यहां।
ज्ञानी अमानी संत जन विज्ञान दायक थे यहां॥२४९॥

जाना प्रथम मम पूर्वजों ने गूढ़ सृष्टि महत्व को।
महतत्व ब्रह्मा विष्णु अरु जीवन मरण के तत्व को॥
आकाश पृथ्वी तल सुतल वितलादि अरु पाताल के।
कोई रहस्य छिपे न थे पानी पवन अरु काल के॥२५०॥

जो चाहते सद्यः वहां सन्दर्भ होता था जहां।
लखि दृश्य यह तरु कल्प भी आश्चर्य्य करता था वहां॥
गो मेध अश्वादिक तथा यज्ञादि करते थे वहां।
होता रहा भय इन्द्र को सुरलोक नहिं लेवें कहीं॥२५१॥

मम पूर्वजों के सामने शशि धूम्र हो जाता सदा।
पाठक! कलाधर पूर्व से ही है कलंकित सर्वदा॥

पारस तथा चिंतामणी नहिं तुल्य हो सकते सभी।
नहिं ऊपमा मैं दे सकूं, सागर समुद्रों की कभी ॥२५२॥

वे सद्गुणों से युक्त थे, संसार के आचार्य थे।
सत्यादि विद्या वेद विधि ही धार्य्य उनके कार्य्य थे॥
सन्तान उनकी आज हम यद्यपि अधोगति में पड़े।
पर पूर्वजों के चिन्ह कुछ कुछ देख पड़ते हैं खड़े ॥२५३॥

सर्वस्व को जो दान दे निज पीठ तक अर्पण किये।
जो सत्य रक्षा हेतु ही कवचादि का त्यागन किये॥
उन पूर्वजों के कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है।
प्रिय पाठकों! देखो वही गुण गा रहा संसार है ॥२५४॥

मम पूर्वजों के सत्य की कैसी कथा अनमोल है।
वह शाप नारद का विज्ञ ! सब जानता भूगोल है॥
जिसके लिये हरि जन्म ले उन घोर विपिनों में तभी।
हा! जानकी! सीते वचन, कह कर वहां भटके कभी ॥२५५॥

भ्रमणा धरा निज धूरि पर यदि त्याग दे तो त्याग दे।
संसार सारा कार्य्य अपना त्याग दे तो त्याग दे॥
यदि रतनेश मर्य्यादा रहित अपकर्म कर देवे कहीं।
था पूर्वजों का कथन यह हम सत्य छोड़ेंगे नहीं ॥२५६॥

शशि तप्त हों रवि शीतवत् यदि त्याग दें निज धर्म को।
आकाश वायू अग्नि जल भी छोड़ दें यदि कर्म को॥

संसार मर्य्यादा-रहित अपकर्म यदि करदे कहीं।
था पूर्वजों का कथन यह हम सत्य छोड़ेंगे नहीं ॥२५७॥

यह सत्य है! यह सत्य है! हम सत्य छोड़ेंगे नहीं।
यदि नील मलयादिक तथा विन्ध्याअचल चलहों कहीं॥
तिथि ग्रह तथा व्यवहार जग टर जांय अपनी लीक से।
दिग्गज धरा से पृथक हो टल जांय अपनी ठीक से ॥२५८॥

अचलादि चल, चल हों अचल संसार मर्य्यादा रहित।
ध्रुव है यही हरिचन्द्र का रहता सदा सत के सहित॥
सौर्य्यादि मंडल ध्वंस हो यदि ध्वान्त हो जावै कहीं।
यह सत्य है! यह सत्य है! हम सत्य छोड़ेंगे नहीं ॥२५९॥

पाठक! उन्होंने सत्य-हित अन्याय सारे सह लिये।
हा! लक्ष्मी नहीं सर्वस्व तजि निज धर्म का चिंतन किये॥
परमार्थ-हित जिनने कभी निज अस्थियां तक दे दिये।
जो बिक गये चांडाल के घर सत्य रक्षा के लिये ॥२६०॥

वीरता।

बल वीरता गम्भीरता उत्कर्षता इस देश की।
सारा जगत है जानता शैशव दशा के भेष की॥
थे एक सौ सौ से लड़े! बलवार व्रत धारी बड़े।
अक्षौणियों के बीच में भी दीख पड़ते थे खड़े ॥२६१॥

सौ कोश तक थे दौड़ सकते ले धरा को हाथ में।
बारह बरस जिनने रखा सर तेग धन्वा साथ में॥
जिनके समक्षन एक भा भृगुराज की पौरुष चली।
वे वीर लक्ष्मण धीर थे कैसे अपूर्व महाबली॥२६२॥

वे शब्द बेधा वीर क्षत्रिय धीर पृथ्वी थे यहीं।
सत बार भी जिनसे कभी क्या म्लेक्ष जय पाये कहीं॥
प्रति-युद्ध में होकर पराजय, भेंट कछु देता रहा।
आकर-शरण-चौहान की, वह मुक्त हो जाता रहा॥२६३॥

जिनके समक्षन एक भी चाणूर मुष्टिक की चली।
संखा तथा वह पूतना कंसादि सब हारे बली॥
उस कृष्ण की गम्भीरता में वीरता थी छा रही।
रघुवंश वालों क्षत्रियों! क्या याद पिछली आ रही॥२६४॥

गोविन्द राणा का तथा है वीर बंदा की कथा।
जिसके श्रवण से नित्य ही उठता हृदय में है व्यथा॥
यवनारि, रक्षक देश के वह लक्ष कैसा उच्च था।
हे हिन्दुओं! तव पूर्वजों के सामने सब तुच्छ था॥२६५॥

जिनके समक्ष न एक भी म्लेक्षाधिपति की कुछ चली।
वे वीर शीवाजी हुए कैसे अपूर्व महाबली॥
जिनने हिलादी नीव सारी म्लेक्ष की इस देश से।
धन धर्म की रक्षा तथा हमको उबारे क्लेश से॥२६६॥

सारा जगत है जानता विजयी सिकन्दर था वली।
पर चन्द्र गुप्त महीप के सन्मुख न उसकी कुछ चली॥
पश्चात् सेल्युकस समर में था हार कैसा ले गया।
उस चन्द्र गुप्त नरेन्द्र को धन-राज्य-पुत्री दे गया॥२६७॥

थे वीर विक्रम भी यहां कैसे अपूर्व महाबली।
जिनके प्रवल आमर्ष से शक देश में था खलवली॥
"संग्राम" की वल वीरता संसार में प्रख्यात है।
विभु! राम सिंह की धीरता भी विश्व में विख्यात है॥२६८॥

॥ शिक्षा ॥

साहित्य शिक्षा, वेद-विधि, विज्ञान, की भरमारता।
सब से प्रथम था विज्ञ, भारत, थी प्रगट वह शूरता॥
गुरु कुल रहे! ऋषिकुल रहे! आश्रम रहे ब्रह्मचर्य्य के।
*कुल-पति हजारों थे जहां, इस ओर नेता वर्य्य से॥२६९॥

"शिक्षा लिये मम पूर्वजों से विश्व आता था वहां।
पाताल यूरप अरब सारा सर झुकाता था जहां॥
जापान लंका श्याम आदिक देश जो प्रख्यात हैं।
जावा सुमात्रा द्वीप भी जो विश्व में विख्यात है"॥२७०॥

---

* एक हजार विद्यार्थियों को जो भोजन वस्त्रादि देकर पढ़ाने वाला हो वही कुलपति कहलाता था।

गुरु देश सीज़र का तथा ईशा मसोका है यही।
शुभ ज्ञान—दाता! तम विनाशक देश भारत है यही॥
वे हैं हमारे हाँ ऋणी मस्तक झुकाते थे सदा।
जो दास बन इस देश का शुभ ज्ञान पाते थे कदा॥२७१॥

धर्म।

धर्म ही वेदान्त का सिद्धान्त सिद्ध विचार है।
पतित-पावन-ज्ञान दाता, विश्व का आधार है॥
धर्म मानव कर्म है, शुभ कर्म सद्व्यवहार है।
जिसके अलौकिक तेज से, पाठक! टिका संसार है॥२७२॥

यह शुद्ध कर्त्ता है हृदय सत्कर्म के सञ्चार से।
आनन्द देता है सदा निज शुद्ध सत्य विचार से॥
मग्न रहते हैं सदा जो धर्म पथ की खोज में।
स्वर्गीय भावों को कभी वे प्राप्त करते ओज में॥२७३॥

रौरव तथा भूभार क्रिग्निम् ताप तीनों जाय है।
भू-स्वर्ग के आनन्द का नहिं अन्य भिन्न उपाय है॥
शुद्ध सात्विक लोक-पावन धर्म सच्चा है जहां।
हाँ! वहां फिर स्वार्थ ईर्ष्या छल कपट विग्रह कहां॥२७४॥

उन पूर्वजों को देखिये, जो साथ उनके था सदा।
जिसके लिये वे विश्व में अति दुःख पाते थे कदा॥

सुख दुःख वे गुनते न थे और सोच करते थे नहीं।
पर धर्म की होती विजय यह वाक्य कहते थे वहीं ॥२७५॥

हमारी अवनति आरम्भ।

तीनों युगों में जब हमारी पूर्ण उन्नति हो गई।
पर मोह रूपी ग्राह से तब मन्दगति मम हो गई॥
बस और क्या आगे बढ़ेंगे चक्र नीचे को फिरे।
जैसे चढ़े थे, अन्त में, हम ठीक वैसे ही गिरे ॥२७६॥

उत्थान के पीछे पतन सम्भव सदा है सर्वथा।
मासादि मध्य मयंक ज्यों सर्वस्व खोता है यथा॥
जिसका रहा उत्थान जैसा पतन वैसाही हुआ।
जैसे चढ़ा था ज्वार, भाठा ठीक वैसाही हुआ ॥२७७॥

पैदा हुआ अभिमान पहले चित्त में निज शक्ति का।
जिससे रुका वह श्रोत सत्वर शील श्रद्धा भक्ति का॥
अन्याय जब बढ़ता गया, अनुदारता आने लगी।
वह प्रेम प्यारा फट गया हा! कुमति बल पाने लगी ॥२७८॥

महाभारत।

जब बढ़ गया अन्याय, ईर्ष्या, द्रोह वैभव दुष्टता।
अस्मात भारत-भूत-भावी-भाग्य पाया क्लिष्टता॥

स्वार्थ, ईर्ष्या, छल, कपट था, कौरवों ने जब किया।
तब कृष्णने आकर वहां, उपदेश-गीता का दिया ॥२७६॥

विशु! धर्म पथ से पतित हो अपमार्ग में क्यों धाय है।
निर्दिष्ट, निर्णय मार्ग से, अन्यत्र क्यों दौड़ाय है॥
है लोभ; ईर्ष्या स्वार्थ भारी; पाप का समुदाय है।
सब जानकर, तू क्यों सुयोधन! धर्मपथ नहिं जाय है ॥२८०॥

श्री कृष्णके साँचे वचन उर में लगे जब तीर से।
बोला वचन आमर्ष-मय रोषी सुयोधन वीर से॥
क्या? ठीक है उपदेश यह; केशव न मानूं तव कही।
मैं राज्य की सूच्याग्र भूमी युद्ध विनु दूंगा नहीं ॥२८१॥

बस बात क्या अब और थी भारत समर सजही गया।
दो बन्धुओं में द्वेष का डंका अजब बज ही गया॥
अति रगड़ करने से चन्दन से निकलती आग है।
क्या न होता जब विगड़ता देशका शुभ भाग्य है ॥२८२॥

हा! भारत भयंकर युद्धकी आश्चर्य्य दायक है कथा।
जिसके कथन से पाठको! उठता हृदय में है व्यथा॥
सर्वनाश का यह लक्ष था तम गूंजता चहुं ओर था।
भ्राता पिता नहिं जानता सर्वत्र क्रन्दन शोर था ॥२८३॥

पाठक! समर के मध्य का यह दृश्य कैसा घोर था।
यदि पुत्र था उस पक्ष में लड़ता पिता इस ओर था॥

निज बंधुओं के नाश का ही लक्ष था इस युद्ध का ।
क्या क्या ! न होता विश्व में जब कोप होता क्रुद्ध का ॥२८४॥

निज पुत्र के ही रक्त से लाली हुई सारी मही ।
मरघट बना यह स्वर्ण मन्दिर भव्य भारत सब कहीं ॥
देश के अवलम्ब नामी वीर वर सब मर मिटे ।
पौरुष तथा बल वीरता विज्ञान विद्या सब घटे ॥२८५॥

होता न जो भारत समर भावी न होती देश की ।
दृढ़ द्रोह ईर्ष्या द्वेष की दौर्बल्य नाना क्लेश की ॥
हा ! दृश्य ऐसे पतन का नहिं देखना पड़ता मुझे ।
विशुनाथ ! लेकर ठीकरा नहिं क्रन्दना पड़ता तुझे ॥२८६॥

बल वीरता गम्भीरता भारत समर लेता गया ।
भय भीतता, अल्पज्ञता, भारत ! तुम्हें देता गया ॥
हा ! दिग्विजय का वह पताका अन्त उस दिन से हुआ ।
हे हिन्दुओं ! तुम कौन थे क्या हाल तेरा है हुआ ॥२८७॥

म्लेक्षों का आक्रमण ।

वह भीष्ण भारत अन्त में सर्वस्व अपना खो गया ।
यहि भांति जब हतभाग्य भारत दीन दुर्बल हो गया ॥

अनार्य्य म्लेच्छ शकादि गण निर्भय हुये चढ़ने लगे।
निर्वीर्य्य हमको देखकर कायर सभी घढ़ने लगे ॥२८८॥

चढ़ते सदा शृंगाल ज्यों लखि केशरी घायल जहां।
त्यों म्लेच्छ गण निज सैन्य ले, चढ़ने लगे मुझपर यहां॥
पद-पीठ पर जो सर्वदा, निज मणि मुकुट धरते रहे।
जिन आर्य्य-गण के कोप से गिरि-कोट में बसते रहे ॥२८९॥

जिनको पढ़ाया था हमी वे थे हमारे छात्र ही।
भारत! बनाया था तुही उनको सुखद सत्पात्र भी॥
शुभ धर्म प्यारा प्रेम पावन पाठ तेरा ही किया।
हा! विद्या तथा थी एकता, भारत! तुम्हारा ही दिया ॥२९०॥

वे दस्युगण! नर सृष्टि के विध्वंश विधि में विज्ञ थे।
दर लूटना, घर फूकना, दनुजत्व में ही विज्ञ थे॥
गजनी तथा तैमूर, नादिर, और तुग़लग़ का वहां।
सिद्धान्त सच्चा शौर्य्य था, था लूटना जो था यहां ॥२९१॥

उनके विकट अविचार की वह क्लेश दायी है कथा।
जिसके श्रवण से पाठकों! उठता हृदय में है व्यथा॥
ले सैन्य भारत पर सदा, अरि! काल बत चढ़ता रहा।
धन प्राण प्यारा नाश कर, मरघट मही करता-रहा ॥२९२॥

म्लेच्छों का राज्य ।

इस भांति जब अनरीति का साम्राज्य भारत हो गया।
रक्षित रहा यह राष्ट्र, सो, पल में, पराया हो गया॥
कर्तव्य की ही भ्रान्ति से सुख प्रेम की सन्ध्या हुई।
इस भव्य भूमी देश की हत्या हुई हत्या हुई! ॥२६३॥

*संकेत सूचक ग्रन्थ, कितनी बार जल भुन जा चुके।
उन म्लेक्ष गण के कृपा से ऐसी दशा हम पा चुके॥
लाखों करोड़ों पुस्तकों की होलिकाएँ हो गयीं।
शुभ कीर्तियां ऋषि और मुनियों की बहुतसी खो गयीं॥२६४॥

सिद्धान्त के प्रतिकूल उनकी चाल दिखलाती रही।
अज्ञान या अभिमान वा निज शान दिखलाती रही॥

---

*जब म्लेच्छ लोग भारत पर चढ़ाई करते थे तो गावों को लूटना, रात में सोये हुये मनुष्यों को कैद करना वा जान से मार डालनाही अपना मुख्य उद्देश्य समझते थे। उनके असंख्य सैनिक भारतवर्ष के पुस्तकों को जला कर भोजन बनाते थे, जब महमूद गजनी भारत पर १७ वार चढ़ा था तो लाखों करोड़ों पुस्तकें जला डाला, तथा कुछ समुद्र में बहा दिया और बाकी दामी मालों के साथ ऊंट पर लाद कर गजनी ले गया था जब वख्तियार खिलजी भारत पर विजय प्राप्त किया था तब विहार की पुस्तकालय जला दिया जिसमें असंख्य पुस्तकें थीं—कितने म्लेच्छों ने नालन्द के विश्व विद्यालय को जला दिया-जो विश्वगुरु-विश्व विद्यालय था—जिसमें एक हजार-कमरा केवल विद्यार्थियों के पाठ हेतु था तथा जहां हजारों कुलपति रहा करते थे इस प्रकार म्लेच्छों ने भारत को मरघट मही बना छोड़ा।

†टूटी हजारों मूर्तियां, अपमान हिन्दू धर्म का।
क्या क्या? कहें हम पाठकों उस पक्ष वाले कर्मका ॥२६५॥

वृटिश शाशन।

उन म्लेक्ष गणके कोपसे, भारत विकल व्याकुल हुआ।
सर्वत्र हाहाकार क्रन्दन, पूर्ण जय-आकुल हुआ॥
अन्याय जब कुछ बढ़ गया पौरुष थका सर्वत्रही।
अन्याइयों का राज्य क्या अस्थिर कभी रहता कहीं? ॥२६६॥

जितने दिनों के लिये जिसको ईश देता राज है।
उतने दिनों तक शक्ति उसकी सत्य करती काज है॥
कुछ दिन हमारे साथ थी कुछ दिन यवन के संग भी।
पर सत्य है धन संपदा एकाग्र नहिं रहती कभी ॥२६७॥

इस भांति जब प्रभु ने लखा, अन्याय भारत पर बढ़ा।
सबको घटाया विपलमें जो कष्ट गिरि-वत था चढ़ा॥
अधिकार भारत का दिया श्वेतांग-नृप साम्राज्य को।
शाशित अभी जो कर रहे इस भव्य भूमी राज्य को ॥२६८॥

---

† वे आर्य्य-धर्म के विरुद्ध, म्लेच्छगण हमारी मूर्तियों को तोड़ दिया करते थे। जहां जहां रमणीक स्थान देखते थे वहां वहां जाकर हमारी मूर्त्तियों को तोड़कर अपना मस्जिद बना देते थे। इस प्रकार वे दस्युगण हमारी बहुतसी मूर्त्तियों को तोड़ डाले उनका मुख्य उद्देश्य यह था कि हम हिन्दुओं को म्लेच्छ बनावें। उनके राज्य की दशा भी ठीक नहीं थी सर्वत्र लूट पाट हुआ करती थी।

॥ अंतिम शब्द ॥

शैशव दशा में वीरता थी युद्ध में भी क्षमा थी।
थी बस्तियों में भी तपस्या, काननों में रमा थी॥
निज धर्म में अनुराग था, थी शक्ति पर उपकार को।
धन धर्म ही का दास था, था रूप केवल प्यार को॥२९९॥

साहित्य विषयक ज्ञान में विज्ञान अरु सम्मान में।
अनुभूति धर्म—विभूति में, सतपंथ के व्यय धान में॥
चल वीर विजयी बांकुरा, निज धर्म में वे शूर थे।
क्या क्या कहें गुण पूर्वजों के जान लो भरपूर थे॥३००॥

तम छा गया चहुं ओर से है गर्जना आकाश से।
हा! स्वर्ण भारत क्या हुआ चंदन विपिन के वास से॥
दृढ़ द्रोह है! अभिमान है, बस और सब जाता रहा।
विश्वनाथ! तेरा हाल हम से जायगा कैसे कहा॥३०१॥

पाठक! हृदय में देख लीजे वाटिका निज देश की।
उलझन हटाओ शिघ्र ही कंटक निकालो क्लेश को।
हा! समय जाता है चला वह काल सा दौड़ा हुआ।
यह वर्त्तमान निहारिये जो है पड़ा रोता हुआ॥३०२॥

ॐ नमः शिवाय ।

भारतोद्धारिणी

॥ वर्तमान खंड ॥

प्रवेश ।

क्या सोचती रुकती यहां ? मग दूर तक जाना तुम्हें ।
हां ! अवलंब का निर्धार, प्यारी ! लक्ष तूहीं है हमे ॥
प्रिय लेखनो ! प्यारी मेरी; चिन्तित नहीं तुम हो यहां ।
जों कुछ शुभा शुभ ज्ञात हो, अब शिघ्रही लिख दो यहां ॥१॥

इस भव्य भूमी भूत-भावी की दशा चित लाय कर ।
विशु ! नोक से हृत्पत्र पर लिखदो सभी समझायकर ॥
शैशव, तथा इस वेष का, प्रतिबिम्ब कुछ देना यहां ।
प्रिये ! शिघ्रहि पूर्ती करो; अवकाश फिर होगा कहाँ ॥ २ ॥

वर्तमान भारत ।

प्रिय पाठकों ! आश्चर्य्य है, क्या है वही भारत यही ।
जो था मुकुट संसार का हा ! आज कैसा है वही ॥

था श्रेष्ठ विद्या बल तथा धर्मादि अरु व्यापार में।
विख्यात *गोल्डनवर्ड बत जो था कभी संसार में॥ ३॥

छोटा युवा बूढ़ा बड़ा जहं धर्म पथ की चाह में।
थे पूर्ण सानंदित सदा स्वर्गीय सुःख प्रवाह में॥
सत संग होता था वहां स्वाध्यायी संतों का सदा।
निज धर्म की ही खोज में था मूल चिंतन सर्वदा॥ ४॥

आचार्य्य था, सिर मौर था, विज्ञान दाता था कभी।
संसार सारा शरण आ निन सर झुकाता था तभी॥
थे मानते गुरु दृष्टि से, सिर मौर भारत वर्ष को।
सारा जगत है जानता इसके अमित उतकर्ष को॥ ५॥

था †विश्व गुरु उद्धार कारी, प्रेम पटुता साथ था।
सर्वत्र फैला एक्यता, भारत! जगत का माथ था॥
निर्मल तड़ागों में वनज बहु भृङ्ग गण पाते रहे।
जिस भव्य भूमी खंड में सुरराज तक आते रहे॥ ६॥

---

* भूतकाल में, जिस समय भारत उन्नत दशा पर था। यरोप वाले "गोल्डन वड" अर्थात् सोने की चिड़िया कह कर पुकारा करते थे

† गुणाधिपति गणपति के पिता, आदि शक्ति भवानी सती के पति, त्रितापहारी, तेजस, भक्तवत्सल, दयानिधे, भगवान त्रिलोचन के अनुयायी योगर्षियों का हिरण्यगर्भीय तेज समस्त भूमंडल में व्याप्त है, योगर्षियों की गति जगत से वहिर्भूत है। इन्हीं लोगों से यह स्वर्ण भूमी उज्ज्वलित तथा धन धान्य पूर्ण, विश्वोद्धारिणी और ज्ञान गौरव शालिनी हुई।

पर हाय ! अब इसकी दशा विपरीत दिखलाती यहीं।
वह विश्व गुरुता श्रेष्ठता; क्या? देख पड़ती है कहीं॥
चंदन विपिन की यह दशा नहिं गंध का अब लेश है।
हा ! सर्वस्व ऊजड़ हो गया, पाठक ! भयंकर क्लेश है॥ ७॥

वर्णाश्रम की वर्त्तमान दशा।

गोस्वामी।

उन पूर्वजों के चिन्ह अब इनमें नहीं कुछ रह गये।
चिन्ह मिलता है नहीं जो कुछ यती गण कह गये॥
श्रुति शास्त्र और पुराण का करते रहे प्रिय पाठ जो।
सन्तान उनकी चाह करती दुर्गुणों के ठाठ को॥ ८॥

भिक्षा विना रहता सदा पूरित जहां धन धान्य था।
इन्द्रादि लोकों में सदा जिनका रहा शुभ मान्य था॥
सात्विक गुणी विष्णु सदा करते रहे सम्मान थे।
सन्तान को देखो यहाँ कैसे हुए अज्ञान वे॥ ९॥

माँगन करें दिन भर सदा पर भीख मिलता है नहीं।
शूद्र भी हा ! उच्च इन को अब कदा लखता नहीं॥
उन नीच वर्णों में भी इन के मान्य अब होते नहीं।
हा ! देख कर के दृश्य भी ये मूर्खता खोते नहीं॥ १०॥

आलस्य इनके ज्ञाति में हा! घूमता सब ओर है।
झूठ द्रोह और मालिन्य घर घर गूँजता घनघोर है॥
अधर्म का जिन पूर्वजों ने त्याग कैसा था किया।
पर देख लो सन्तान उलटा ठीक वैसा ही किया॥११॥

हा! एक मुट्ठी अन्न कारण द्वार द्वार पुकारते।
कहते हुए कातर वचन सब ओर हाथ पसारते॥
यजमान तेरी जय रहे, शंकर करें कल्याण अब।
द्वार पर साधू खड़ा है, शिघ्र दो कुछ दान अब॥ १२॥

इस के अलावे तीर्थ में जुटते सदा दल बाँध कर।
वे दर्शकों से प्रश्न करते हैं सदा कर बांध कर॥
दाता तुम्हारी जय रहे, हा! एक पैसा दीजिये।
शुभ दान देकर के मुझे उद्धार अपना कीजिये॥ १३॥

तब तक पहुंचे दूसरा अरु तीसरे भी आ गये।
दाता हमें दाता हमें अपनी तरह सब गा गये॥
दर्शक विचारे जा रहे दश बीश पाछे हैं पड़े।
दाता न देता दान कुछ तो भी न ये रहते खड़े॥१४॥

खप्पर लिये कोई कहे मेरा कहा ही कीजिये।
सब कह रहे अपनी तरह दाता मुझे ही दीजिये॥
इस तरह उस पाल में यदि एक पैसा मिल गया।
तो सोचता है और क्या दृढ़ द्रोह का दिल खिल गया॥१५॥

दाता से यदि कुछ नहिं मिला तो शाप देते हैं सभी।
पर असत्य-वादी से यहां क्या सत्य होता है कभी॥
अन्यत्र इसके और देखो कुटिचकों की हीनता।
विद्या तथा उस ज्ञान की भी हीनता की दीनता॥१६॥

सब कोई उन्नत में लगा पर यह पतित ही हो रहा।
हा! शत्रुता विद्या से कर सर्वस्व अपना खो रहा॥
देखो! जिधर अब बस उधर ही मूर्खता है छा रही।
हा! हा! अविद्या की यहो कैसी निशा है जा रहो॥१७॥

ब्राह्मण।

भूदेव विद्या पूर्ण विप्रों की दशा भी देख लो।
उन के अमित अपकर्ष का यह दृश्य प्यारे लेख लो॥
यह आज वे भूदेव कैसे देख पड़ते हैं यहां।
हा! जो पीर थे; देखो वही भिश्ती, बवर्ची खर यहां॥१८॥

जिन के अतुल उत्कर्ष से, इन्द्रादि घबड़ाते रहे।
अपने अनूपम ज्ञान से जो दैव दरसाते रहे॥
थे द्रोण, कृप से वीर जो भृगु, शृंगिवत विद्वान थे।
द्रौणी, परशु कपिलादिवत संसार के विज्ञान थे॥१९॥

जो प्राप्त करते थे सदा आनन्द ब्रह्मा नन्द से।
हा! देख लो पीछे पड़े हैं आज विषयानन्द में॥

वह शाप सत्यासत्य का क्या देख पड़ता है कहीं? ।
क्या सत्य होता है कदा? जो कुछ कभी कहते कहीं ॥२०॥

पट कर्म प्यारे भाइयों! हा! अब न उनमें दीखते।
यज्ञादि वेदों का पठन अब कौन उनसे सीखते॥
विद्या विदेशों में गई अरु कर्म चौपट हो गया।
है कर्म यदि अवशेष तो बस दान लेना रह गया॥२१॥

गणणा नक्षत्रों की जहां कहीं ध्यान में कुछ आ गये।
तब बात क्या अब और है वे स्वर्ग पथ को पा गये॥
संकल्प क्या/कोई वस्तु हैं; मन्त्रादि कहते हैं किसे।
पार्थिव विषय क्या वस्तु, है; प्रणवादि कहते हैं किसे॥२२॥

अनभिज्ञ हों, तौ भी सदा पार्थिव उलटते दीखते।
सर्वत्र निन्दा हो रही तौ भी न जापट! सीखते॥
हा! विद्या से इन को डाह है और वैर बुद्धी से सदा।
अब मान पापों का रहा आलस्य निद्रा सर्वदा॥ २३॥

अविवेक तिमिराच्छन्न,यत कटुपथ्य में नित लीन हैं।
लोभादि विषयों में पड़े सर्वस्व शक्ती हीन हैं॥
शुभ कर्म विद्या बल तथा नहिं ध्यान दें शुभ काम पर।
केवल मरे जाते सभी बस पूर्वजों के नाम पर॥२४॥

अपने अलौकिक तेज से ब्रह्मांड दहलाते रहे।
जो पूर्व में भूसुर तथा भूदेव कहलाते रहे॥

जिन ब्राह्मणों के दृष्टि से ही लोभ घबड़ाता रहा ।
पर देखलो यह पाठकों ! हा ! आज कैसा हो रहा ॥२५॥

अब तो सदा इनकी प्रथा विपरीत दिखलाती यहीं ।
पाठक ! ब्रह्मत्वादिक कदा क्या दृष्टि में आती कहीं ॥
जब ब्राह्मणों की यह दशा तब क्यों न गारत देश हो ।
हों ज्ञान दाता ज्ञान बिनु तब क्यों न तम परवेश हो ॥२६॥

क्षत्रिय ।

हे पाठकों ! अब ध्यान देकर क्षत्रियों को लीजिये ।
उन के पतन का भी भयंकर चित्र दर्शन कीजिये ॥
हा ! संसार के पालक अतः धर्मादि के जो केन्द्र थे ।
पाठक ! वहिर्मुख हो रहे; जो वर्ण के वीरेन्द्र थे ॥२७॥

जिनके प्रबल सामर्थ से असुरादि घबड़ाते रहे ।
अरिनाश-करि-भूभार-हरि जो भूप कहलाते रहे ॥
वे आज तिमिराच्छन्न .वत अविवेकिता में लीन हैं ।
कुल मान मर्य्यादा रहित हा ! हो रहे कस दीन हैं ॥२८॥

"वह भीष्मवत ज्ञानी" तथा "अर्जुन समान महारथी ।
जिसके समक्ष न हो सके संग्राम में सारे रथी" ॥
"भष्म कर देता था जिसका क्रोध सारे रंक को" ।
सन्तान उन के घूमते सर्वत्र देखो ! रंक हो ॥ २९॥

विपरीतता सन्तान में अब ठीक दिखलाती यहां।
उन पूर्वजों की वीरता हा! दृष्टि में आती कहां॥
स्वाधीनता लक्ष्मी तथा उस धर्म का नहिं दर्स है।
पाठक! विनिष्ट अरिष्ट है; यह हाय! कैसा तर्स है॥३०॥

रति पति इन्हें रति में रता आलस्य देता भेंट है।
हा! मालिन्य ईर्षा द्वेप से होता सदा अलसेट है॥
कोई अधीश्वर है कहीं क्या न्याय करना जानते।
निर्द्रव्य डाका डालना ही धर्म अपना मानते॥ ३१॥

रक्षा अपत्यों की तथा होगी प्रजा की किस तरह।
सब ध्यान तजि कटुपथ्य भजि सन्तत बढ़ाते हैं सरह॥
जो देश के रक्षक रहे वे आज भक्षक दीखते।
थे वीरवर विख्यात जो, भयभीतता ही सीखते॥ ३२॥

जो सर्वादि गुण सम्पन्न थे, हा! आज विषयाधीन हैं॥
करि करि विषय की वासना सामर्थता से हीन हैं।
यदि दीन आते दर्शनों को दैन्य दुःखों से दवे।
वरिवंड अरि प्रति हार गण वरवस उन्हें देते हवे॥३३॥

दुख क्या कहेंगे भूप से अब दर्श तक होता नहीं।
विक्रम तथा उस *मौर्य्य का; क्या था नियम ऐसा कहीं॥

---

* मौर्य अर्थात् चन्द्रगुप्त—यह महानन्द के बाद भारतवर्ष का राजा हुआ। इन सब नरेन्द्रों का यह नियम था कि रात्री में भेष बदल कर शहरों

उन पूर्वजों का वह चरित क्या देख पड़ता है कहीं।
हा! आज इनके रूप का प्रतिबिंब तक होता नहीं ॥ ३४ ॥

सहाय्य कारण युद्ध में देवादि भी सुरपति सहित।
आते रहे जिनके यहां हा! आज वे बल से रहित॥
संसार के जो क्षत्र थे हा! आज कैसे हो रहे।
नैया डुबो कर देश का अज्ञान निद्रा सो रहे॥ ३५॥

वैश्य।

उन क्षत्रियोंका हाल यह अब वैश्य गण को लीजिये।
इनके विषय में भी यहां अब ध्यान थोड़ा दीजिये॥
अविचार रूपी पथ्य से वे हाय! तिमिराच्छन्न हैं।
पाठक! यहां इनकी दशा भी देख पड़ती भिन्न हैं॥ ३६॥

जो देश के वाणिज्य की उन्नत सदा करते रहे।
दुर्भिक्ष आदिक काल में संकट सदा हरते रहे॥

या ग्रामों में भ्रमण कर प्रजा के सुख दुख की दशा जान कर उसे उद्धार करना। जो कभी कोई बड़े संकट में पड़ जाता था वह राजा के निकट जाकर अपना सुख दुख सुनाता था—पर आज यह प्रथा नहीं। हा! आज इन देशी नरेशों के प्रतिमा का दर्शन पाना बहुत कठिन है—उन राजकर्मचारियों के दुःसह बर्त्ताव से क्या प्रजा प्रतिमा दर्शन पा सकती है? कदापि नहीं। क्या यही राजाओं का प्रजा के साथ वर्ताव है? कदापि नहीं।

धन अन्न से इस देश का भन्डार जो भरते रहे।
कर के सुपथ व्यय वित्त का यज्ञादि बहु करते रहे ॥ ३७ ॥

ये वाणिज्य में अनभिज्ञ हो, निज देश वित्त बहा रहे।
करि करि कठिन अविचार नित, लक्षादि पति कहला रहे।
वृषभादि गोपालन तथा कृषि कर्म दिखलाता नहीं।
हा ! कौशल्य उद्यम वेद विद्या दृष्टि में आता नहीं ॥३८॥

पच्छरट्टे तथा पौर्चून में इन की निपुणता देखिए।
हा ! कार्य्यादि अरु उद्यम तथा साहस दिवाला लेखिये॥
निज कर्म तजि दल्लाल बनि अपकर्म करते हैं सदा।
हा ! आलस्य के प्रिय पात्र बन सर्वस्व खोते सर्वदा ॥३६॥

करि करि विषय की बासना ये नीच पद पाने लगे।
हा ! सारा द्विजत्व विनिष्ट कर बक्काल कहलाने लगे ॥
धन के लिये वे मर रहे, पर सोचते कुछ भी नहीं।
क्या ? इस तरह संसार में हा धन कभी रहता कहीं ॥४०॥

"धर्मार्थ सब जाता रहा" औदार्य्य मात्र विवाह में।
पाठक ! लुटाते वित्त बहु नाचादि रंग प्रवाह में ॥
शुभ कार्य्य के कारण कभी यदि पास उनके जाइये।
हा ! कीजै अनेकों यत्न तो नहिं चार कौड़ी पाइये ॥ ४१॥

इन के विषय अब पाठकों ! लिखना यहां बेकार है।
हा ! अपने चरित का लक्ष ही देता उन्हे धिक्कार है॥

हा ! सोमता अन्याय अरु अविचार से कोई कहीं ।
कोई *दिवाला डाल कर हा ! लक्ष पति होता कहीं ॥४२॥

व्यापार विषयक ज्ञान सारा दर्श होता भ्रष्ट है ।
पाठक ! नराधम ! देश को हा ! दे रहा कस कष्ट है ॥
बंधुओं ! ये वैश्य भी रागी विलासी होय कर ।
नैया डुबोई देश को अज्ञान निद्रा सोय कर ॥४३॥

शूद्र ।

जब मुख्य वर्ण द्विजातियों का हाल ऐसा है यहां ।
प्रिय पाठकों ! अब क्या कहें, वे शूद्र गण कैसे यहां ॥
यहि भांति सब अविचार करि अज्ञाननिद्रा सोयकर ।
नैया डुबो दी देश की रागी विलासी होय कर ॥४४॥

---

*आज कल भारतवर्ष के कुछ वणिकों (वैश्य) का यह कार्य है कि बहुधा दिवाला मारा करते हैं अर्थात् सर्व सम्पत्ति अपने उत्तराधिकारी वा बंधुओं के नाम से लिख देते हैं और मालिक की जमा वा किसी दूसरे महाजन का धन (माल) पचा लिया करते हैं-इसी प्रकार बहुत दिवालिया सेठ हो जाते हैं । यह परंपरा वा यह लत्त विशेष कर मारवाड़ियों में पाई जाती है-पूर्व में यह बात नहीं थी कारण लोग व्यापार भली भांति सच्चाई के साथ करते थे । पर आज सर्वथा विपरीत है ।

साधू (संत) ।

इन साधुओं को देखिये, हा ! दृष्य कैसा घोर है ।
पाताल से आकाश तक तम छा गया चहुं ओर है ॥
षटचक्र भी जागा नहीं, शिव नेत्र तक जाना नहीं ।
श्री संत, अपना नाम तो रख ही लिया माना नहीं ॥४५॥

घर पर हुई खटपट जहां, उत्साह सारा तज दिये ।
झटपट मढ़ी में जाय अपना टीक मुड़वा ही लिये ।
हा ! कान फूँका गुरू ने कंठी गले में डाल दी ।
वह राह बिगड़ी स्वर्ग की क्या ? पूर्ण रूप संभाल दी ॥४६॥

बस बन गये वे संत, देखो भष्म लपटाने लगे ।
"विक्षेप" को देखा नहीं, बस मांगने खाने लगे ॥
हा ! देश का धन मांग कर गांजा चरस में फूँकते ।
निर्लय्य ! पापा चरण में भी क्या कभी हैं चूकते ॥४७॥

थे साधु ऋषि त्यागी मुनी अवधूत योगी राम के ।
कैसे सफल साधक हुए कैसे हुए निज काम में ॥
वल्कल-वसन रहते कुटी में जागते थे ध्यान में ।
थे कीर्ति-कंचन-कामिनी को त्याग डूबे ज्ञान में ॥४८॥

वन में वसें बनवास ले, पावन नदी के पास में ।
फल फूल पत्तों से गुजर करते परम विश्वास में ॥

सोते जहां थे वे वहां सर्पादि भी सोते रहे।
उन योगियों पर सदय वे व्याघ्रादि भी होते रहे ॥४९॥

एकान्त के आवास में, थे धैर्य्य को पकड़े हुए।
प्रति अंग को थे "शान्ति" डोरी से सदा जकड़े हुए॥
मुख थे बने रवि प्रात के, जाने न देते हर्ष को।
करते तपस्या रात दिन, परमात्मा के दर्श को ॥५०॥

जो साधु बनता था, नहीं वह पाप करता था कभी।
उस समय के सब साधु थे, साधक बड़े सच्चे सभी॥
वे पुत्र थे जगदीश के, भ्राता चराचर जीव के।
वे साधु पत्थर रूप थे, ब्रह्माण्ड रूपी नीव के ॥५१॥
हा! आज के इन साधुओं का दृश्य ही कुछ और है।
सर्वत्र कंचन-कामिनी का दीख पड़ता शोर है॥
कोई उदासी कह रहे, सन्यास--पथ चित हम दिये।
कोई विरागी दीखते, टेढ़े फटाका ही किये ॥५२॥

दादू कबीरादिक कहीं झंडा लिये दिखला रहे।
अन्जान जनता को सदा अपमार्ग ही सिखला रहे॥
उन वैष्णवों के बीच हा! तम गूँजता चहुंओर है।
पाठक! *सखी-दल की कथा दायी व्यथा घनघोर है ॥५३॥

---

*सखी दल। यह एक वैष्णव सम्प्रदाय का अंग है, जिसके साधू स्त्रियों के भेष में रहते हैं - और प्रति मास अपने को कहा करते हैं कि हम रज-

वर्त्तमान के ज्योतिषी ।

ग्रह फेर है खुद पर पड़ा, ग्रह-द्वार तक देखा नहीं ।
ग्रह चाल भी परखी नहीं, बदनाम होते सब कहीं ॥
तप-हीन कहते जो जभी सो झूठ होता है वहीं ।
हैं ज्योतिषी भूले हुए, ज्योतिष भला मिथ्या कहीं ॥५४॥

वर्त्तमान के वैद्य ।

सब हाल पूछें प्रथम ही, फिर हाथ नाड़ी पर दिया ।
दो चार पुस्तक देख नुस्खा रोग नाशक रच लिया ॥
उन ऊँट वैद्यों की कथा, हमसे नहीं जाती कही ।
उनकी कृपा से वैद्य कुल की सब प्रतिष्ठा उठ रही ॥ ५५ ॥

...ना हुये हैं—इस प्रकार वे चार दिन तक उसी प्रकार मानते हैं जिस प्रकार ...ति स्त्रियां मानती हैं, पश्चात् चौथे दिवस शुद्ध हो कर एक कमरे में पलंग बिछा कर एक डंडा में वस्त्र लपेट भगवान का लिंग मान कर रख देते हैं— और रात्री में भगवान को प्रसन्न करने के लिये उसी डंडे के साथ सोते तथा भोग करते हैं। पाठकों ध्यान पूर्वक देखें कैसी अज्ञानता व्यापी है—क्या पुरुष रजस्वला होता है ? हाय—इस पुण्य भूमि की यह दशा !

वर्त्तमान के सम्पादक।

वे, लीडरों की दुम पकड़ चांचों मचाते खूब ही।
ऊपर उछलते भी नहीं, जाते न बिलकुल दूर ही॥
सहयोगियों के साथ इनको पहलवानी हो रही।
सम्पादकों की गति, विधाता से न जा सकी कही॥५६॥

भरकर प्रथम यदि जोश में पिस्तौल अपनी दाग दो।
गरदन जभी पकड़ी गयी, तो तुरत माफी माँग लो॥
पाई खबर सो छाप दो, प्रतिवाद भी छप जायगा।
भगवान! उन को किस दिवस लिखना कलम से आयगा॥५७॥

वर्त्तमान के लेखक।

घी दूध भोजन को नहीं, चिन्ता गृहस्थी की बड़ी।
भारी समस्या द्रव्यकी मुख खोल कर आगे खड़ी॥
तप तेज से हैं सून्य, भोगी, खोपड़ी है जरा सी।
लिखने चले पोथी अहो! अत्यन्त विस्तृत धरा सी॥५८॥

वर्त्तमान के कवि।

हैं शत्रु पिंगल--मार्ग के--प्रतिमां अभी जागी कहाँ।
मौलिक बनेंगें किस तरह, अज्ञानता छाई वहाँ॥

हैं भाव ठगना जानते, निज नाम के भूखे बड़े।
अभिमान के पुतले बने, आकाश के ऊपर खड़े ॥५९॥

विद्या नहीं है पास में बकवाद करना जानते।
हैं दास इन्द्रिय पांच के बस नाम रटना मानते॥
वे हैं जगत को जानते अज्ञान अपने से सदा।
तम रूप कलियुग भक्त वे हैं, रक्त चसैं सर्वदा ॥६०॥

वर्त्तमान उपदेशक।

बकवाद कारी लोग अब, उपदेश देते हैं यहां।
कहना उन्हें है दूसरा, है दूसरा करना वहां॥
अपराध भाजन ईशके, सन्मुख हुए तो दुख नहीं।
सम्मान भाजन है जगत में, पा रहे सुख सब कहीं ॥६१॥

केवल मनोरंजन करें, जब लोग आते सामने।
मन पृथक है निज काम से, पकड़ा उन्हें है नाम ने॥
उन्नत नहीं अपनी हुई उन्नत पराई कर रहे।
वे राग गाते त्याग का, स्वयं त्याग करते डर रहे ॥६२॥

वर्त्तमान के नेता।

प्रभु से नहीं आज्ञा मिली,, प्रभु! शक्ति भी चुपचाप है।
तौ भी सताता लीडरों को लीडरी का ताप है॥
अज्ञान निज खोया नहीं, पाया न अवनति का पता।
सद्गुरु कभी खोजा नहीं, जो मार्ग दे सकता बता ॥६३॥

महंथ।

पाठक ! महन्थों की दशा भी आज ऐसी ही यहीं।
उनकी कदा उत्कर्षता क्या दृष्टि आती है कहीं॥
दश ग्राम हैं जागीर के, मोटर खड़ा गुरु--द्वार में।
चेले अनेकों हैं खड़े, गुरु देव के दरबार में ॥६४॥

हा! दीखते थे संत हैं, यह कलियुगी लीला यहीं।
देखे नहीं हैं स्वप्न में वे योग को जानैं नहीं॥
घी--दुग्ध--भोजन--राबड़ी, खोआ मलाई जानते।
मनसिज चढ़े दल साज जब, तब भोग करना जानते ॥६५॥

देखो ! महन्थों में भरा कैसा यहां शृंगार है।
सुकुमारता ही मीत है, पाखण्ड का व्यापार है॥
अविचार अत्याचार से उनका सना है तन सदा।
* जो त्याग थल था राग थल हो दीख पड़ता सर्वदा॥६६॥

---

*प्रिय पाठकों यह देखने से विदित होता है कि आज भारत वर्ष में लाखों मठाधीश हैं प्रत्येक मठों में गांव, जागीर तथा कुछ न कुछ जमींदारी अवश्य है, हमारे पूर्वजों ने उसे धर्मार्थ अर्थात् साधू अभ्यागत, दीन दुखी और अनाथ व्यक्तियों के भरण पोषण के हेतु दिया था पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस समय वह सिद्धान्त ही प्रतिकूल दिखलाता है। वह हमारे पूर्वजों का दिया हुआ धन एक ऐसे कुमार्ग में लग रहा है कि जिसे देख आंसू

*साधू वहां भूखों मरे पर रण्डियों का मान है।
हां! भाड़ भड़वे मसखरों का पूर्णतः सम्मान है॥
पण्डित, सुधारक और कवि से है उन्हें नफरत बड़ी।
है जी हजूरी की सदा ही भीड़ वह सन्मुख खड़ी॥६७॥

था कुछ किया उस जन्म में, जिस से महन्थी पा गये।
जो कुछ इकट्ठा कर्म था, सो बैठकर यों खा गये॥
ऐसे रहोगे चार दिन, फिर चाहिये रोना तुम्हें।
अब के भविष्यत जन्म में, मानव नहीं होना तुम्हे?॥६८॥

बहाना पड़ता है, सारे भारतवर्ष में भ्रमण कर आप देख सक्ते हैं कि रामजनियों के बिना आज कल इन मठों का कार्य्य नहीं चलता प्रत्येक मठ में दो चार युवतियों का निवास बना ही है महन्थ जी गोपाल तथा युवतियां गोपियां हो ही जाया करती हैं। अहा! हाय! हिन्दुओ! ध्यान दो! ध्यान दो! जिस स्थान पर त्यागियों का वास था वहां पर यह रोग! जहां पर धर्मविषयक तथा स्वाध्यायी संतों से सतसंग होता था, हा! वहीं आज गुण्डों का पाल जुटा है-जहां हजारों अतिथि अभ्यागतों का सम्मान होता था, वहीं आज भांड़ भड़वे रंडियों का मान होता है। जहां का धन साधुओं के निमित्त यज्ञ तथा धर्मार्थ के हेतु था वहां आज वही धन पापाचरण में व्यय किया जाता है। पाठकों! सोचिये कैसा कराल काल है—

*कितने मठों में आज अभ्यागतों का तिरस्कार हुआ करता है। चाहे साधू दो रोज तक भूखे पड़े रहें पर मठाधीश लोग पूछते तक नहीं। हां! हां क्यों नहीं, वे वेश्यायें उन्हें स्वर्ग ले जायंगी! पर यह दीन अभ्यागत क्या कर सक्ता है। महन्थो सोचो! सोचो! अपनी वर्तमान की झलक निहारो।

तीर्थ और पंडे ।

हा ! दिव्य थल ऋषि और मुनियों के तपस्या धाम थे ।
जिस पुण्य भूमी में बसे श्रीराम सीता राम थे ॥
सबसे अधिक अविचार का संग्रह वहाँ ही दीखता ।
अन्याय ईर्ष्या द्वेष का दल-श्रेष्ठ-नूतन दीखता ॥६६॥

हा ! तीर्थ में सबसे अधिक उन रंडियों का धाम है ।
दिन रात खेती पाप की वे पाप के ही धाम हैं ॥
रक्खे नियम कुछ भी नहीं, चाहे जो डुबकी दे रहा ।
गरमी, विकट, सूज़ाक, अति, "परसाद" यात्री ले रहा ॥७०॥

हैं स्वर्ग की सीढ़ी बने, पंडे हजारों तीर्थ में ।
धब्बा लगाते हैं यही, उस तीर्थ वाली कीर्ति में ॥
लड़ना झगड़ना व्यर्थ अड़ना सीखकर पंडे हुए ।
बन मूर्त्ति कुत्सित चलन के, अज्ञान के झंडे हुए ॥७१॥

वर्त्तमान की माता ।

इस वर्ष बीते व्याह को अब तक न बेटा पा सकी ।
वह कौनसी औषधि रही, जिसको नहीं मैं खा सकी ॥
मंदिर गयी मस्जिद गयी, "जंतर लिया मंतर लिया" ।
सब कुछ किया, तब भाग्य ने, इस गोद में बेटा दिया ॥७२॥

वर्त्तमान के पिता।

हे पुत्र ! संस्कृत छोड़ दो दिन रात अंग्रेजी पढ़ो।
फिर नौकरी के ताड़ पर, कस कर कमर जल्दी चढ़ो ॥
लाओ कमा दो चार दश, रुपया हमारा काम हो।
पाला इसी से है तुम्हें तब पुत्र तेरा नाम हो ॥७३॥

कान फूँकना।

इस प्रथा को, तो देखिये, जो चल रहा है देश में।
जिसके हि कारण आज हम सब पड़ रहे हैं क्लेश में ॥
दिक्षा विषय क्या वस्तु है कुछ जान पड़ता है नहीं।
क्या कान फूँके से कभी तम नाश हो सकता कहीं? ॥७४॥

हा ! देखलो अब मंत्र तो बस राम का ही नाम है।
उन तत्व ज्ञानों का सदा अब देख पड़ता वाम है ॥
ईश्वर तथा अब आत्म विषयक ज्ञान कुछ देते नहीं।
हा ! कान फूँके से कभी तम नाश होता है कहीं ॥७५॥

गदहा तथा ठग चोर डाकू अब गुरू के भेद हैं।
हा ! ध्यान दो अब भाइयों ! यह हाय ! कैसा खेद है ॥
कस्मीय अरु भैंसा गुरू भी देख पड़ते हैं यहीं।
क्या कान फूँके से कभी तम नाश हो सकता कहीं? ॥७६॥

गदहा उसी का नाम है जो बोझ अतिही लाय है।
गुण ज्ञान खर सम हो तथा जो विहित से हट जाय है॥
खर हैं वही निज शिष्य का जो ज्ञान देते हैं नहीं।
हा! कान फूंके से कभी तम नाश होता है कहीं ॥७७॥

गदहा हुए है भाइयों! अब ठग गुरू को लीजिये।
इनके चरित का भी भयंकर चित्र दर्शन कीजिये॥
ठग है वही जो द्रव्य हर तम नाश करता हो नहीं।
क्या कान फूंके से कभी तम नाश होता है कहीं ? ॥७८॥

हा! प्रति वर्ष कोई शिष्य के घर नियम से हैं जावते।
शुभ वस्तु उसकी देखकर वहिं मांग कर जो लावते॥
इस भांति हरते द्रव्य नित हा! चोर!! होते हैं वही।
क्या कान फूंके से कभी तम नाश हो सकता कहीं? ॥७९॥

अब डाकू गुरू को लीजिये जो मूर्ख जापटनन्द हो।
पर शिष्य गृह जावे सदा वहि मूर्ख विषयानंद को॥
जो द्रव्य हर कर ज्ञान पथ महँ क्षार तक देता नहीं।
हा! कान फूंके से कभी तम नाश होता है कहीं ॥८०॥

कुछ शिष्य ऐसे हैं यहां गुरु की कसम खाते सदा।
पर साल में कुछ दान देते गुरूजी को संपदा ॥
कसमीआ वही जो द्रव्य हर कर ज्ञान कछु देता नहीं।
क्या कान फूंके से कभी तम नाश होता है कहीं ? ॥ ८१॥

पागुर करे ज्यों भैंस सुनकर वीन की ध्वनि कान में।
त्यों सदा जो मूर्ख रह नहिं ध्यान देता ज्ञान में॥
भैंसा सदा वंचन करे हा! ज्ञान शिष को दे नहीं।
क्या कान फूंके से कहीं तम नाश होता है कहीं?॥ ८२॥

हा! आज ये सब गुरु हमारे देख पड़ते देश में।
जो स्वयं विचारे हीन हैं क्या कर सकें मम क्लेश में॥
ज्यों गुड़ कहे से भाइयों मुख मधुर होता है नहीं।
त्यों कान फूंके से कभी तम नाश हो सकता कहीं?॥८३॥

हे भाइयों! अब ध्यान दीजै त्याग कर अविवेकिता।
सारा जगत यह कह रहा, क्या है नहीं यह मूर्खता॥
स्वयं ही विचारो बंधुओं! क्या ज्ञान दीक्षा है यही।
हा! कान फूंके से कहीं तम नाश हो सकता कहीं॥८४॥

वह ज्ञान चूल्हे में तथा विद्या तेल्हंडे में घुसी।
हे बन्धुओं! अब हो रहे तुम लम्पटा की सी हसी॥
बिनु तम नशाये पाठकों! क्या ज्ञान होता है कहीं।
क्या कान फूंके से कभी तम नाश हो सकता कहीं?॥८५॥

नित विज्ञ हो सब शास्त्र में, तूं आतमा का ध्यान कर।
स्वयं नाश करि तम, शिष्य को भी ज्ञान देना जानकर॥
इश्वर तथा उस आतमा का भेद दिखलाना सही।
धी धैर्य्य धर्मादिक तथा शुभ ज्ञान बतलाना सभी॥८६॥

अविद्या ।

वे आर्य्य गण, विद्या लिये अति कष्ट सहते थे सदा ।
जो त्याग कर निज देश का वनवास करते थे सदा ॥
विद्या तेरे कारण सदा जो त्यागते थे सुःख को ।
तेरे ही कारण वे सदा नहिं जानते थे दुःख को ॥८७॥

पर हाय तूं कैसी निठुर दिखला रही अब चाल है ।
या यों कहें कि यह तुम्हारी समय रूपी काल है ॥
या भाग्य ही विपरीत है, क्या बात कहना चाहिये ।
या मद मोह रूपी दुष्ट दल का घात कहना चाहिये ॥८८॥

हा ! क्या कहें इस जाति में अब क्यों अविद्या हो गई ।
वह वेद विद्या शास्त्र मति सम्पन्नता क्यों खो गई ॥
ज्ञान विद्या बल घटा आवर्त्त नीचे को फिरे ।
जो थे समुन्नत पर चढे हा ! अन्त कैसे हैं गिरे ॥८९॥

तेरे बिना ही मातु अब यह बढ़ रहा व्यभिचार है ।
तेरे ही कारण जाति में यह जग रहा अविचार है ॥
तू ही नहीं है साथ इनके तब तो अन्धाचार है ।
इससे ही दिन दिन बढ़ रहा, देखो ! वो अत्याचार है ॥९०॥

मातु ये तेरे बिना ही दुर्गुणों के दास हैं ।
कब तक रखोगी इस तरह माता तुम्हारी आस है ॥

छायी अविद्या है इन्हें ये नीच पापी बन रहे।
आलस्य को निज साथ ले ये भाग्य के दिन गन रहे ॥६१॥

हे सज्जनों यह देश जो गुरु भाव से पूजित रहा।
पाताल यूरप अरब के भी कंठ से कूंजित रहा ॥
जो ज्ञान विद्या में सदा ही विज्ञ होते थे यहां।
पर सहस्र में दश भी सुशिक्षित अब नहीं होते यहां ॥६२॥

वेद मन्त्रों का सदा ही गान होता था जहां।
वह शास्त्र और पुराण का नित पाठ होता था जहां ॥
जो विद्वान् बन कर देश को उपकार करते थे सदा।
पर सन्तान उनकी मूर्ख बन अपकार करती सर्वदा ॥६३॥

विद्या न होने से सदा वे हो रहे अति दीन हैं।
गति मति सभी मारी गई, अब दुष्टता में लीन हैं ॥
अच्छे बुरे का ज्ञान इनमें शेष नहिं कुछ रह गया।
उन पूर्वजों का रक्त भी इनके बदन से बह गया ॥६४॥

बस देख लो! पूरी अविद्या में पगे हैं ये अभी।
हा! क्या किसी का विश्व में होता पतन ऐसा कभी ॥
हे बन्धुओ! यह देख लो विद्या तुम्हारी नष्ट है।
ज्ञान बल धन है नहीं सब दर्श होता भ्रष्ट है ॥६५॥

जगत जननी मातु विद्ये! यह दशा क्यों हो रही।
पुत्र गारत हो रहे, पर मातु! अब तक सो रही ॥

अब तो उठो हे मातु, जननी, साथ ले निज पुत्र को।
अविद्या सा तम को दूर कर, उद्धार कर दो पुत्र को ॥६६॥

धर्म की दशा।

हा! धर्म भी जाता रहा सब, नष्ट दिखलाता अभी।
यह देखकर उन पूर्वजों का ध्यान आता है कभी॥
जो धर्म, हित, सर्वस्व, अपना, त्याग, करते थे सदा।
जो धर्म रक्षण हेतु ही निज, प्राण देते थे कदा ॥६७॥

धर्म के वे साथ थे और धर्म उनके साथ था।
धर्म के वे हाथ थे और धर्म उनका हाथ था॥
धर्म कारण सुःख को वे त्यागते थे सर्वदा।
सन्तान भी होते रहे धार्मिक यशस्वी ही सदा ॥६८॥

जिन कुटिचकों ने धर्म हित अन्याय सारे सह लिये।
हा! प्राण का बलिदान देकर धर्म का चिंतन किये॥
सन्तान उनको देख लो, कैसी दशा में हैं पड़े।
जैसे चढ़ा था ज्वार हा! भाठा भी वैसे ही पड़े ॥६९॥

यह देख लो! इनमें नहीं अब, धर्म का कुछ काम है।
जग मरे, चाहे डूबे हा! बस पेट से ही काम है॥
अधर्म के सन्मुख यहां क्या, धर्म दिखलाता कहीं।
हा! देख लो, इसजाति में, अब धर्म दिखलाता नहीं ॥१००॥

भगवान के भी वाक्य को ये, त्यागते हैं सर्वदा।
क्या "स्वधर्मो निधनं श्रेय" भी पूर्त्ती, होता है कदा॥

सदा! "पर धर्मों भयावह" यह वाक्य, है भगवान का।
हा! विपरीत रह इससे सदा कल्याण चाहैं मानका ॥१०१॥

कोई उदासी सैव्य कहिं वैष्णव कहीं पर दीखते।
कोई कहीं पर हाथ अब, वामादि पथ ही दीखते॥
पाठक! कहीं सत नाम ही, अल्ला अचल दिखला रहे।
दादू कबीरादिक कहीं अपनी तरह सिखला रहे ॥१०२॥

ध्वनि गूंजती कहिं ओम् की कहिं राम सीता राम है।
कहिं योग यप कहिं ध्यान है कहिं देख पड़ता नाम है॥
होता फतह सतनाम का कहिं वाह गुरु की हो रही।
कहिं मातु दुर्ग कालिका की ही ध्वनि गुञ्जा रही ॥१०३॥

ॐकार होतो है प्रगट, कहिं ज्योति का आमोद है।
अनहद कहीं कहिं खेचरी, कहिं बंध का ही मोद है॥
ठाकुर दया आनन्द का घंटो कहीं घहरा रहा।
हरिहर! तथा शिव! शिव! कहीं से शब्द निकला आ रहा ॥१०४॥

नागा उदासी शैव्य का होता कथन ऐसा कहीं।
दादू कबीरादिक तथा सत नाम गाते हैं यहीं॥
योगी यती जंगम तथा वामादि कहते हैं यही।
राधे! तथा ब्रह्मादि गण! निज गाण करते हैं यही ॥१०५॥

अद्वैत ईश्वर को यहां अपनी तरह सब लेखते।
है वास्तविक में एक पर नाना तरह से देखते॥

हाय ! अब धार्मिक विषय नाना पथों में बट गया।
देखो परस्पर पाठकों वह प्रेम मग अब फट गया ॥१०६॥

वैष्णव कहें हम हीं बड़े, है धर्म मेरा ही प्रबल।
योगी महत् मम मत बृहद् द्रष्टव्य मैं ही हूं अचल॥
ज्ञानारि को कछु ज्ञात है क्या उस †श्वपच की कुछ कथा।
हा! अज्ञान तिमिराच्छन्न-वह यह देख लो तम मय प्रथा॥१०७॥

यहि भांति सब अपनी तरह धर्म्मादि भेद दिखावते।
करि करि प्रबल निज पक्ष की मालिन्य ईर्ष्या पावते॥
बस मात्र भेद दिखावना अब धर्म्म दिखलाता अभी।
क्या उस *हकीकत की दशा हा! दृष्टि में आता कभी ? ॥१०८॥

---

† चाण्डाल शठ कोप। का तेरहवीं शताब्दी के अन्त में दक्षिण भारत के एक पहाड़ी ग्राम में जन्म हुआ था, जब यह बड़ा हुआ तब इस धर्म को फलाना प्रारम्भ किया-कुछ दिनों तक उसका धर्म विस्तार रूप धारण न कर सका, पर जब स्वामी रामानंद प्रचार करने लगे तब ऐसा वृहद् रूप धारण किया, कि गली गली में प्रचार हो गया पाठकों। यह वैष्णव धर्म का उद्भव कारी वही चांडाल शठ कोप है अर्थात् यह धर्म उसी चांडाल शठ कोपका चलाया हुआ है।

* हकीकत राय ! वीरेन्द्र प्रतापी गुरु गोविन्द सिंह जी के पुत्र थे जब मुगल सम्राट औरंगजेब अत्यन्त अत्याचार कर रहा था अर्थात् आर्य्यों को धर्म से भ्रष्ट कर यवन बनाता था उस समय गुरु गोविन्द सिंह अपने बाहु बलसे हिन्दू धर्म की रक्षा कर रहे थे। एक बार जब गुरु गोविन्द सिंहजी पंजाब गये थे, तब उनके पीछे उनके पुत्र हकीकत राय को पकड़वा मंगवाया

जो प्राण का बलिदान दे निज धर्म का चिंतन किए।
लक्ष्मी नहीं सर्वस्व तजि, नहिं धर्म से विचलित हुए।
उनके नशों और नाड़ियों में धर्म काही वास था।
अधर्म तो भय भीत हो जाता कदो नहिं पास था ॥१०६॥

कोई लगा कर सूद ही अन्याय करता है कहीं।
कोई युवा के लहर में हा! मद्य मादक में कहीं॥
कोई बुरों के पेच में पड़ धर्म को खोता कहीं॥
हा! कोई अधर्मा चरण से सर्वस्व खोता है कहीं ॥११०॥

कोई लगा कर भस्म ही रुद्राक्ष धारण है किये।
कोई त्रिचोटी बांधता पर है सदा मूरख हिये॥
कोई कृषी में लीन हैं कोई धरे बहु वेष हैं।
अब धर्म सारा नष्ट है बस भीख ही अब शेष है ॥१११॥

जो धर्म अपने जाति का वह दीख पड़ता है नहीं।
निज पूर्वजों का चिन्ह भी क्या दीख पड़ता है कहीं? ॥

था—और कहा कि तुम हमारा भवन धर्म ग्रहण कर लो हम तुम्हें छोड़ देंगे वरन् तुम्हारा प्राण नाश किया जायगा इस प्रश्न का उत्तर हकीकत रायने इस प्रकार दिया—

बदल जाता है चोला पर आतमा यह मर न जाता है।
उत्पत्ति नाश का कौतुक ये सारा भ्रम दिखलाता है॥

हे औरंगजेब! मैं अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। पाठकों! हकीकतराय दीवाल में चुन दिये गये पर धर्म से विचलित न हुए।

यह धैर्य्य थी विद्या तथा अक्रोध इनमें है नहीं।
हा ! विज्ञान विद्या बल तथा वह ज्ञान गरिमा भी नहीं ॥११२॥

हे हिन्दुओं ! अब ध्यान दो थी पूर्व में कैसी दशा।
प्रत्यक्ष देखो, बंधुओं ! उस धर्म की यह दुर्दशा ॥
निज धर्म तज कर दूसरों के धर्म में लव लीन हैं।
हा ! हा ! यही एक धर्म बिन ये हो रहे अब दीन हैं ॥११३॥

हे बंधुओं! यह देख कर अब धर्म को धारण करो।
अधर्म रूपी शत्रु का निज ज्ञान से मारण करो ॥
उस धर्म का विस्तार कर अपनी दशा पलटाय दो।
अब दिग्विजय का फिर पताका विश्व में फहराय दो ॥११४॥

सन्तान ।

उन गुरुकुलों के नियम का हा! ध्यान जब से हट गया।
बस सर्व शारीरिक तथा वह मानसिक बल घट गया ॥
संतान कैसी है तुम्हारी, बस तुम्हीं अब जान लो।
ब्रह्मचर्य्य के परित्याग का परिणाम ही यह मान लो ॥११५॥

यदि गुरु कुलों के नियम का प्रतिपाल करते सर्वथा।
हे हिन्दुओं हा! आज दिन लिखनी न पड़ती यह कथा ॥
हा ! कर्त्तव्य के परित्याग से दुर्भाग्य ने कैसा छला।
छोड़े नियम निज पूर्वजों का भ्रात! यह कैसा फला ॥११६॥

यदि गुरुकुलों के नियम से कर्त्तव्य अपना पालते।
तो तुम कुमारों को कभी अज्ञान में नहिं डालते॥
बस बीज के अनुकूल ही अंकुर प्रगट होते सदा।
ज्यों वृक्ष के अनुरूप छाया व्याप्त होते सर्वदा॥११७॥

इन अल्पायु सुत का व्याह करते हाय कैसा कष्ट है।
परिपुष्टता के पूर्व ही वल वीर्य्य होता नष्ट है॥
यदि दशा ऐसी ही रही, तो पूछना है क्या भला।
है यह असंसय की तुम्हारा वंश जावेगा चला॥११८॥

कितना अनिष्ट किया तुम्हारा हाय, वाल्य विवाह ने।
अंधा वना देता सभी को बस टका की चाहने॥
हा! अर्थ के ही हेतु तूं करता अनेक अनर्थ है।
धिक्कार फिर भी तो नहीं सम्पन्न और समर्थ है॥११९॥

बुरे ग्रन्थ।

उन वेद मंत्रों का सदा ही गान होता था जहां।
वो शास्त्र और पुराण का प्रिय पाठ होता था जहां॥
हा! चल रहा संगीत नौटंकी का नूतन दल वहां।
शुक शारिका की भी कथा फैला रहा हलचल वहां॥१२०॥

हा! जिस गान में वह प्रेम भक्ती थी सदा मिलती रही।
पर मदन मूर्त्ती के सदृश अब आग भड़काती वही॥

वह वीर करुणा रस सभी शृंगार में ही सो गया ।
हा ! देख लो सब की दशा शृंगार रस ही हो गया ॥१२१॥

उन पुस्तकों के पाठ से क्या ज्ञान मिलता है कहीं ।
कोई बने है स्वार्थी कोई मदन पाता कहीं ॥
विरह से विरही बने और धर्म त्यागे हैं कहीं ।
इन्हीं सब ग्रन्थों को पढ़ कितने बने पापी यहीं ॥१२२॥

कविता तथा संगीत ने इनको ढुलाया खूब ही ।
पाप वृत्ति में रत करा इन को रुलाया खूब ही ॥
पापी नराधम पातकी भी वह बनाता है इन्हें ॥
हा ! असलियत के रूप से भी यह घटाता है इन्हें ॥१२३॥

उपन्यास जिन में पाप पथ ही देख पड़ते हैं सदा ।
हे भाइयों ! अब ध्यान देकर त्याग करदो सबदा ॥
किस्सा कहानी मसखरी से ध्यान अपना मोड़ लो ।
शृंगार बस संगीत को भी शिघ्रही अब छोड़ दो ॥१२४॥

मति भ्रंश ।

मति भ्रष्ट इनकी हो गई हा! नीच पापी हो चुके ।
दीन दुर्बल हो गये बल वीर्य्य सारे खो चुके ॥
जो हित करे इनका उसे ही शत्रुवत ये मानते ।
हा ! दुर्गुणों में लीन हो कटु पथ्य को प्रिय जानते ॥१२५॥

गुण ज्ञान गौरव बल तथा निज सभ्यता को खो चुके।
अब मणि बिना फणि की गती सम हाय! येसब हो चुके॥
पाषान के संग पार होना उदधि में ये चाहते।
हा! क्लिष्ट वृति को प्राप्त कर ये मोक्ष पाना चाहते॥१२६॥

हे भाइयों! तुम सद् गुणों से आज रहते दूर हो।
पर निज प्रशंशा हांकने में कालवत तुम शूर हो॥
जो कर रहा तेरी बुराई ध्यान तुझको है नहीं।
हा! जाति मारै जाति को क्या है चलन ऐसी कहीं॥१२७॥

हे भाइयों वे सोचते कैसे तुम्हारा भंग हो।
पर हर तरह तूं सर्वदा कहते उन्हीं को अंग हो।
हा! देखलो हे पाठकों! क्या जाति का यह काम है।
सर्वस्व जिसका हर लिया उसको न देना ठाम है॥१२८॥

मतिभ्रष्टता को त्याग कर अब ज्ञान को धारण करो।
ऐसे जनों को अब सदा तूं वाक्य से मारण करो॥
उन से सदा कीजे विनय हा! अच्छा नहीं यह कोर है।
हा! जो नष्ट करता जाति का गौरव उसे धिक्कार है॥१२९॥

दुर्गुण।

हे भाइयों अब देखलो; तुम में महा मद मोह है।
आलस्य ईर्ष्या द्वेष है; दौर्बल्य है, दृढ़ द्रोह है॥

हा ! एकता का नाश है; विद्वेष दिन दिन बढ़ रहा।
यह देख कर भी दुष्टता का भूत तुम पर चढ़ रहा ॥१३०॥

दुर्वल जनों के साथ तुम रखते सदा दृढ़ द्रोह हो।
हा ! अल्प धन की प्राप्ति में करते सदा मद मोह हो ॥
पर स्वान वत तुम भागते हो वीरवर के सामने।
हा! पतित तुम को किया है बस! बस!! यही एक कामनें ॥१३१॥

भाइयों ! वित्त साधन में तुम्हारी रह गई अब भक्ति है।
पुरुषार्थ सारा जा चुका बस मन मुखी ही शक्ति है ॥
अब दुर्गुणों से चित्त तेरा भंग रहता है सदा।
निज इन्द्रियां होके प्रबल नित जंग करतीं सर्वदा ॥ १३२॥

वह एकता जाती रही अब बच रहा दृढ़ द्रोह है।
देखो! परस्पर द्वेष है कैसा चढ़ा मद मोह है ॥
हे पाठको! इस जगत में जो जन करें असत्कार हैं।
ज्ञानी अमानी संत जन देते उन्हें धिक्कार है ॥१३३।

व्यभिचार।

व्यभिचार पद पद बढ़ रहा कैसी अधोगति हो रही।
पुन्य भूमी की यहां से कीर्त्ति सारी खो रही ॥
थे हमारे पूर्वजों की कीर्त्ति अब हम में नहीं।
जो पुन्य भूमि प्रसिद्ध थी हा ! आज ऐसा अघ वहीं ॥१३४॥

हे भाइयों ! देखो यहां कैसी भयानक रीति हैं।
अर्द्धाङ्गिनी से प्रेम तज वेश्या से करते प्रीति हैं ॥
ऐसे नराधम नारकी बलात्कार करते हैं सदा।
शूद्रानियों के संग में व्यभिचार करते सर्वदा ॥१३५॥

हा ! स्त्रियों को प्राप्ति में करते अनेकों यत्न हैं।
ये लुच्चे लफंगे लालची इनके गले के रत्न हैं ॥
अनुचित उचित का ध्यान तजि अपकर्म करते हैं सदा।
इस कर्म में शत गालियां भी मौन धर सहते सदा ॥१३६॥

हा ये घृणित् इस कार्य्य में जासूस रखते हैं कहीं।
मोहन तथा वो वशीकरण का चक्र चलवाते कहीं ॥
बस भोग और विलास ही इनके निकट सब सार है।
इसके सिवा वह धर्म पथ देता भयंकर भार है ॥१३७॥

मात्सर्य्य।

हे भाइयो ! निज जाति को प्रेमी समझते हो नहीं।
वैरी समझते बंधु को क्या है चलन ऐसी कहीं ? ॥
इसके ही कारण गृह कलह होता है एकत्र विनाश अब।
पर राम *रामानुज को देखो ! था हुआ वनवास जब ॥१३८॥

अब विद्वेष इनके चित्त से क्षण मात्र भी हटती नहीं।
दो बंधुओं में भी परस्पर अब यहां पटती नहीं ॥

---

* लक्ष्मण।

हा! विशेषता इस देश में पहले अविद्या का बढ़ा।
बस समय पा विद्वेष भी निज सैन्य दल बल ले चढ़ा ॥१३९॥

हा! एक भाई चाहता हम से न दूजा श्रेष्ट हो।
उसको सदा दुख ही रहे मेरी दशा ही श्रेष्ट हो॥
हा! ये सोचते हैं दूसरा क्यों उन्नति है कर रहा।
आनन्द होते हैं तभी जब दीन भाई मर रहा ॥१४०॥

सुन लो जरा यह सोच इन का है यहां कैसी चली।
भाई मेरा भूखों मरे तब पक्ष में मेरी भली॥
निज जाति का कोई कहीं भी मान पाता है कभी।
मस्तक ठनक जाता है इनका हाल पाते हैं जभी ॥१४१॥

बस बात क्या अब और है उसकी बुराई में लगे।
देखो घृणित इस कार्य्य में वे स्वयं कैसे हैं लगे॥
यदि दीन भाई के यहां सम्बन्धि आते व्याह को।
तो असुरवत सिर ले घटाते हा! उनके चाहको ॥१४२॥

कोई कहे वो दीन है मत व्याह कीजैगा वहां।
पर दुष्ट को क्या ज्ञात है; भगवान सब करता यहां॥
यदि पाणि-ग्रहण की हैं प्रतिज्ञा नियुक्त वर के साथ में।
हा! चल पड़े अन्याय करने दैत्य दल ले साथ में ॥१४३॥

जो विध्वंश करता यज्ञ को पापी नराधम है वही।
ऐसा नराधम पातकी क्या ठौर पावेगा कहीं? ॥

हे पाठकों! यह देख लो क्या यह बड़ों के कर्म हैं।
माहिल सदृश करके बुराई नष्ट करते धर्म हैं॥१४४॥

सन्मुख करें वे बात मीठी, पर अन्त में फिर हों वही।
वे जानते ये निजी हैं, पर कर्म ये करते वही॥
कर्तृत्व इनके देख कर माहिल हि इनको लेखलो।
हे भाइयों अब ध्यान देकर कर्म इनके देख लो॥१४५॥

जातीयता क्या वस्तु हैं निज जाति कहते हैं किसे।
बर्ताव है क्या जाति से; निज धर्म कहते हैं किसे॥
अनभिज्ञ हो, हा! जाति का बर्ताव उल्टा हो रहा।
नहिं कर्म है नहिं धर्म है सर्वस्व गारत हो रहा॥१४६॥

स्त्रियों की दशा।

गोस्वामिनी गार्गी सती सी थीं यहां पर नारियां।
अनसूया अहिल्या थीं सुभद्रा की सदृश सुकुमारियां॥
जिस देश में थीं. भारती सम विद्वताएं नारियां।
शास्त्रार्थ में मध्यस्थ होती थीं सदा सुकुमारियां॥१४७॥

पूरी लड़ाकी कर्कशा ही दीख पड़तीं अब सदा।
रहती अविद्या मूर्ति सी; पतिवंचका यह सर्वदा॥
कैसी रहीं यह पूर्व में कुल नारियां होती यहां।
हा! सत्यादि धर्माचरण इन का आज दिखलाता कहां॥१४८॥

कृष्ण भग्नी वीरपत्नी थी सुभद्रा भी यहीं।
जो युद्ध में भी पुत्र को उपदेश देती थी यहीं॥
"प्राण भय से पीठ दिखला भाग मत आना कभी।
प्राप्त कर लेना विजय मुंह मुझको दिखलाना तभी॥१४६॥

जननी जन्म स्थान के रिन का सभी पर भार है।
मातृ भूमी भक्ति से भागे उसे धिक्कार हैं॥
जो जन्म ले निज देश का उद्धार करता है नहीं।
वह है नराधम नारकी नहिं मान पाता है कहीं" ॥१५०॥

जो थीं गृहस्थी रूप रथ की एक पहिया सिद्ध वे।
अब तो गृहस्थी रूप मरघट की बनी हैं गिद्ध वे॥
विद्या नहीं है पास में, बिलकुल अविद्या रूप हैं।
करती भयंकर जा रहीं संसार को भवकूप हैं॥१५१॥

बकवाद करना सीखकर झगड़ा उठाना जानतीं।
वे मानती हैं जो कि अपने हृदय में सच मानतीं॥
पति सासु देवर जेठ आदिक खूब आदर पा रहे।
है कसर पिटने की रही, गाली अभी हैं खा रहे॥१५२॥

है प्यार गहनों पर बहुत वे अवगुणों की धाम हैं।
अब तो गृहस्थी धर्म के बिगड़े हुए सब काम हैं॥
शिक्षा बिना ही बाल विधवा जाय वेश्या रूप है।
शिक्षा बिना संसार उनके हेतु दुख का कूप है॥१५३॥

वर्त्तमान विधवा समाज ।

उन नारियों में हो रही, वैधव्य की भरमार है।
रोने नहीं देती उन्हें, हा ! वज्र की ही मार है ॥
शिशु बालकों के व्याह से, विधवा जगत भर सा गया ।
लखि मूर्त्ति विधवा नारि की संसार अब डर सा गया॥१५४॥

हा ! पुरुष करता व्याह कितने और सुख से सो रहा ।
मन उस विचारी नारि का, दिन रात व्याकुल हो रहा॥
जो व्याह करना चाहतीं कर व्याह उनका दीजिये ।
जिनको विवाह विरोध हो, प्रतिपाल उनका कीजिये॥१५५॥

प्रति वर्ष कितनी बाल-विधवा धर्म अपना खो रहीं ।
माता पिता को और हिन्दू धर्म को वे, रो रहीं ॥
हैं भागती वे मुसल्मानों संग बहकाई हुई ।
मिलती हजारों "चौक" पर अत्यंत दुख पाई हुई ॥१५६॥

है जा रहा विधवा महा दल पाप वाले पंक में ।
लो देखलो सन्तान मरती, आज माँ के अंक में ॥
या पुत्र पैदा कर रहीं वे, मुसल्कानी धर्म के ।
हैं पाप छाये जाति में हम हिन्दुओं के कर्म में ॥१५७॥

कितने धनी जन खर्च करते रण्डियों के प्रेम में ।
ले आइये उनको पकड़, विधवा सहायक नेम में ॥

धन और आदर से उन्हें, अपनाइये अपनाइये ॥
कह कर "अभागिन" दुःख उनका, अधिक मत बढ़वाइये ॥१५८॥

जो हो गयी विधवा कहीं, तो पाप उसका है नहीं।
जो मर रहा है मनुज सो, निज पाप से मरता वही ॥
सुख दुःख जीना और मरना आप अपना कर्म है।
सम्बन्ध आपस का नहीं, यह गुप्त विधिका मर्म है ॥१५९॥

अनमेल विवाह।

अनमेल व्याहों की वहुत, इस देश में भरमार है।
है दस बरस की वालिका, पर, साठका भरतार है ॥
पति को निरख कर वालिका, बाबा समझती है उसे।
वह मूक लड़की दोष देने जायगी कहिये किसे ॥१६०॥

देखी गयी पत्नी बड़ी, पति देव छोटे हैं अभी।
चाची सरीखी नारिके; सम्मुख नहीं जाते कभी ॥
हंसते सभी रहते सदा, अनमेल जोड़ी के लिये।
हम हिन्दुओंने व्याहमें, उत्पात क्या थोड़े किये ॥१६१॥

हा! हिन्दुओं की यह अवस्था पूर्व से विपरीत है।
वह दुर्गुणों का ढेर है, नहिं दीख पड़ती प्रीत है ॥
हा! बाल वृद्ध विवाहसे विधवों की संख्या बढ़ रही।
उनके दग्ध कारी दाह से फटती कभी हिलकर मही ॥१६२॥

आकाश रोता है तथा भू कम्प होता है कभी।
हा! बाल-विधवा-वृन्द से अन्याय बढ़ता है अभी॥
जो आनन्द-नद में मग्न थे, जिस देश के प्राणी सभी।
बिसुनाथ! देखो दृश्य उनके जाति की कैसी अभी ॥१६४॥

प्रेत--पूजन।

हिन्दू घरों की नारियाँ, अब प्रेत-पूजक बन रहीं।
अब भूत ही का भूत उनको, दीखता है सब कहीं॥
जो दर्द अथवा ज्वर हुआ, तो प्रेत की बाधा हुई।
इस दीन हिन्दू जाति में, यह भी नयी व्याधा हुई॥१६५॥

इस प्रेत पूजन के लिये, बलिदान तक होता यहां।
अब 'कबर' पूजें नारियां, हैं मर्द सब सोते वहां॥
सब देव देवी छुट गये, अब भूत प्रेत मसान हैं।
सैयद, हठीले पीरसे अब, बन रहे श्रीमान हैं॥ १६६॥

ये प्रेत--पूजन आप के घर हो रहा है किस लिये।
मानव सरीर प्रजेशने, तुमको दिया था इस लिये॥
सुर कोटि हैं तैंतीस विधि, हरि और हर ईश्वर जहां।
भुइयां, मदार मसान की, पूजा दिखाती है वहां ॥१६७॥

वे नारियां क्यों जा रहीं, दरगाह का मारग लिये।
तब कौन रोकेगा कि जब, पुत्रादि ब्रह्मा ने दिये॥

उनको यहाँ को रोकता जो हैं मनस्वी बन रहे।
चारों तरफ़ से विघ्न की तैयारियाँ जो कर रहे॥ १६८॥

अब क्यों न हा! प्रतिदिन बढ़े, व्यभिचार भारतवर्ष में।
जब विप्र क्षत्रिय वैश्य शूद्रादिक न हैं उत्कर्ष में॥
निज धर्म कर्म समाज का संगठन जो करता नहीं।
वह देव द्विज गोवंश पूजक वास्तविक होता नहीं॥ १६९॥

जो दूसरों की पीर-पूजा पाठ पढ़ता है सदा।
सो क्यों भला सुख शान्ति पावे, नाम पावे नर्मदा॥
जगदीश! है विनती यही कर जोर मेरी सर्वदा।
अब से सबुद्धि प्रदान कर, जीवन सुधारे सौख्यदा॥१७०॥

स्वास्थ्य रक्षा।

जिस स्वास्थ्य से श्रीराम ने था, विजय रावण पर किया।
जिस स्वास्थ्य से हनुमान ने, सागर उलंघन कर दिया॥
जिस स्वास्थ्य से श्रीकृष्ण ने नखपर पहाड़ उठा लिया।
जब स्वास्थ्य को हा! आज भारत ने समूचा खोदिया॥१७१॥

जिस के लिये था योगियों ने योग साधन को क्रिया।
जिसके लिये व्यायाम प्राणायाम साधन था क्रिया॥
जिस के लिये चरकादि ने अवतार जग में था लिया।
जिस के लिये हे मानवो! क्या आपने कुछ भी किया॥ १७२॥

जब स्वास्थ्य ही धर्मार्थ कामाऽमृत सदा देता मही।
जब सब धनों में स्वास्थ्य धनही श्रेष्ठ है दिखता सही॥

तब कौन है, स्वास्थ्य हित तन मन निछावर दे नहीं।
निज देह गृह को स्वास्थ्य सुख सम्पत्ति से भरता नहीं ॥१७३॥

जब स्वास्थ्य पावेंगे तभी हम विजय पा सकते नहीं।
यह स्वास्थ्यरक्षा स्वास्थ्य रक्षा कथन से मिलती नहीं॥
नित राम राम पुकार से हम राम बन सकते नहीं।
क्या औषधों के नाम से मिटती बिमारी है कहीं॥ १७४॥

यदि मनुज हो मनुजत्व का कुछ गर्व रखते हो सही।
यदि प्राण देकर भी तुम्हें नित अमर रहना है यहीं॥
तो मानवो! निज स्वास्थ्य पर पुनि ध्यान देते क्यों नहीं?
शुचि स्वास्थ के शुभ क्षेत्र में आ मुद बढ़ाते क्यों नहीं॥ १७५॥

विवाह-रहस्य

जिस देश की महिमा अलौकिक स्वर्ग तक बढ़ती गई।
जिस जाति की गौरव ध्वजा सर्वत्र ही गड़ती गई॥
जिस धर्म पर बलिदान होना देश भक्ति कही गई।
उस देश जाति सुधर्म की हा! यह दशा कैसे हुई॥ १७६॥

अब पूर्व सा नहिं तेज है, नहिं ज्ञान मान विचार है।
निज धर्म छोड़ कुकर्म करने की प्रथा विस्तार है॥
दिन दिन अधोगति हो रही विधवा बनी भव भार हैं।
इस पर कभी हे हिन्दुओ! तुमने किया न विचार है॥१७७॥

यही है वही भारत जहाँ नर नारि-प्रेम विमुग्ध हो।
करते परस्पर प्रेम थे, पर आज लड़ते क्रुद्ध हो॥

निश दिन कलह के जाल फँस, दुखित होते क्षुब्ध हो।
अनमेल खेल समान व्याह करें धनों में लुब्ध हो ॥ १७८ ॥

जब तक पुरोहित और गुरु यजमान हित नहिं जानि हैं।
जब तक नहीं माता पिता 'वर वधू' योग्य प्रमानि हैं॥
जब तक विवाह रहस्य को नर-नारि नहिं पहिचानि हैं।
जबतक विवाह-सुधार "सरयू" नभ कुसुमसम मानि हैं ॥१७९॥

बाल-वृद्ध-विवाह।

अब बाल, वृद्ध-विवाह ने अड्डा जमाया है जहाँ।
प्रति दिन हजारों बालिकाएँ हो रही विधवा जहाँ॥
चारों तरफ हा! रो रही विधवा विचारी हैं जहाँ।
कैसे भला सुख शान्तिकारी राज्य पावोगे वहाँ॥ १८० ॥

खोकर विमल इतिहास अपना देखते आश्चर्य्य का।
जो काम होता नित्यही हा! भारतीय अनार्य्य का॥
ऐ हिन्दुओं! सोचो जरा क्यों मूँछ अब हो ऐंठते।
ऐसी दशा को देखते क्या आर्य्य भी थे बैठते॥ १८१ ॥

भगतीं कहीं हैं बालिकाएँ भागते बालक कहीं।
रोती कहीं हैं नारियाँ रोते यथा नर हैं कहीं॥
क्या क्या कहूँ सर्वत्र हा हाकार! होता है यही।
यह भारतीयों की दशा सब जानते क्या हैं नहीं॥ १८२ ॥

जब जानकर अनजान होते जा रहे आवेश में।
निज देश को गारद किये हम जा रहे परदेश में॥

तब क्यों न पावे कष्ट प्रति दिन हो दरिद्री वेश में।
क्या जागते नर को जगा सकता कोई नर वेश में ॥ १८३ ॥

पर क्या कभी है आपने इस प्रश्न पर सोचा कभी।
क्यों हो रही ये यातनाएँ भारतीयों की अभी ॥
मैंने विचारा है सुधारक मण्डली भी कह रही।
यह बाल वृद्ध-विवाह ही है मूल कारण सब कहीं ॥ १८४ ॥

जो आज से भी छोड़ दे इन कुप्रथाओं की प्रथा।
तो शीघ्र ही सुख शान्ति पावें, नष्ट कर जग की व्यथा ॥
देश जाति समाज हित से ही पुनः होगा तथा।
श्रीराम कृष्णादिक समय में था सदुन्नत यह यथा ॥ १८५ ॥

करि यत्न बहुविधि स्वयं पुरन्दर विफल जत होता रहा ।
रम्भा तथा रतिपति बुला सानन्द यों कहता रहा ॥
हे मदन ! ले शर पञ्च-निज (करमें) धनुष सन्धान कर ।
ऋषि भूमि में जाकर करो टङ्कोर धन्वा तान कर ॥ १८७॥

मुनि का हृदय निज शस्त्र से तू वेध कर आना यहां ।
यति भंग कारण योग में रम्भादि ले जाना वहां ॥
पा इन्द्र की आज्ञा मयन हो संग रम्भादिक सहित ।
जाता रहा ऋषि के निकट, निःशंक दाया से सहित ॥१८८॥

मन-मुग्ध-ऋषि के हेतु रम्भा कोकिला की तानसे ।
गाती तथा थी नाचती मनुहारता के मान से ॥
मनसिज वहीं था पांच-शर ले धनुष ऊपर जोड़ता ।
टङ्कोर दे ऋषि के हृदय में शिघ्र ही था छोड़ता ॥१८९॥

विश्वनाथ ! छल करता रहा मन्मथ सदा उद्योग से ।
रम्भा सदा थी चाहती यति भ्रष्ट हो मम भोग से ॥
एवं विफ़ल हो हो सभी जाते रहे निज धाम को ।
हे हिन्दुओं ! दो ध्यान यह सोचो वृहद् अन्जाम को ॥१९०॥

थी शक्तियां ब्रह्मचर्य की कैसा तपोबल उच्च थो ।
हे बन्धुओं ! तव पूर्वजों के सामने सब तुच्छ था ॥
अब हाय तुम अज्ञान- वश सर्वस्व अपना खो रहे ।
ब्रह्मचर्य प्यारा मित्र तजि अज्ञान निद्रा सो रहे ॥१९१॥

॥ वर्णाश्रम की अतीत दशा ॥

गोस्वामी ।

विधि ने प्रथम तप लोक से गोस्वामि को पैदा किया ।
सब से प्रथम सिर मौर आसन प्रेम से साग्रह दिया ॥
सब ओर सारे विश्व का आधीन ब्रह्माने किया ॥
मोक्षादि रक्षा ! धर्म को; अवतार धरणी पर दिया ॥१६२॥

गोस्वामियों में अब तलक जग की सुरत अटकी हुई ।
जग के अतीताकाश में वह चाँदनी छिटकी हुई ॥
इतिहास जय जय कार करता विश्व गुरु की सर्वदा ।
रघुनाथ जी ने कुटिचकों के पद-कमल वन्दे सदा ॥ १६३ ॥

षट शास्त्र, दर्शन, स्मृतियां, गृह सूत्र गीता कार थे ।
व्याकरण ज्योतिष रमल वैद्यक के प्रणोताकार थे ॥
टीका रचे हैं वेद की साहित्य अनुपम रच गये ।
योगीश वे भूगोल, भर नयन भीतर जच गये ॥ १६४ ॥

गौतम मुनी कृत न्याय सूत्र ख्यात है संसार में ।
है नाव दुखिया पथिक की इस घोर पारावार में ॥
उन के मनोहर दर्शनों से पाप मिट जाते सभी ।
था पुन्य मिलता और मन से दूर होता तम तभी ॥१६५॥